समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

अगस्त–सितम्बर, 2023, वर्ष 48

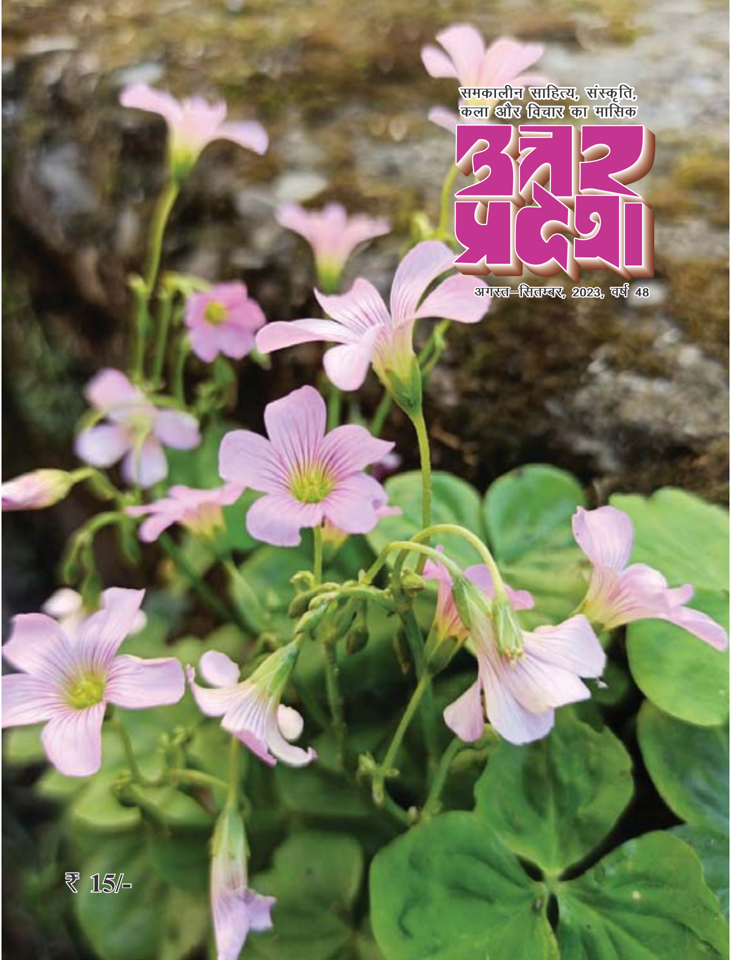

₹ 15/-

नीलाम्बुज सरोज की कविता

क्या तुमने देखा है उषाकाल के आकाश को?
क्या खेतों में पानी पटाने पर मिट्टी का रंग देखा है?
शतरंज की मुहरें भी बराबरी का हक पा जाती हैं
जम्बूद्वीप भारत में क्या तुमने, किसी साँवली लड़की को
देखा है कभी गौर से ?

उन्हें काजल की तरह आँखों में बसाया नहीं गया
कलंक की तरह ढोया गया
शर्म की तरह ढाँपा गया
बुरी नीयत की तरह छिपाया गया

उन्हें फेयरनेस क्रीम से लेकर
सीमेंट की बोरी तक
बेचा गया
काला सोना बताकर
लूटा गया।

दीपशिखा नहीं
उसकी कालिख समझा गया!

उन्हें कूटा गया
काली मिर्च समझकर

उनके चेहरे की किताब पर
लगाया गया मेकअप का कवर

साँवली लड़कियां
उग आती हैं बाजरे की कलगी की तरह
पक जाती हैं गेंहू की बालियों सी
छा जाती हैं रात की मानिंद
जल थल आकाश कर देती हैं एक
और अपने आगोश में समेट लेती हैं
पूरी पृथ्वी को

उन्हें खोजना हो तो
विज्ञापनों में नहीं
देखना किसी लाइब्रेरी की चौखट पर
या धान के खेत में बुवाई करते हुए
या रुपहले पर्दों के पीछे
नेपथ्य में।

उन्हें ढूंढों
उन कहानियों और कविताओं में
जिन्हें कभी पढ़ा या गाया नहीं गया

वहाँ मिलेगी तुम्हें वह साँवली लड़की!
जिसकी आँखों में तुम्हें शायद दिखे,
उसके दर्द का वह उद्दाम आवेग–
जिसे उसकी मुस्कराहट के बाँध ने
थाम रखा है।

पता : वीर कुंवर सिंह वि.वि. आरा–802301
भोजपुर, बिहार
मो. :. 917044178071

अनुक्रम

मंथन
- झूठी मेधा और अवदान का अवसान ❑ गौतम चटर्जी / 3

ललित निबन्ध
- क्या आपने बारिश की खूबसूरती का आनंद लिया ? ❑ अखिलेश मयंक / 5

कहानी
- दुआ ❑ योगीन्द्र द्विवेदी / 8
- घर वापसी ❑ पेटे हेमिल / 11
- हस्बेमामूल ❑ राम नगीना मौर्य / 13
- सेंध ❑ महावीर अग्रवाल / 19
- सांझ ❑ डॉ. रंजना जायसवाल / 23
- मेरी यादों में गाँव ❑ रंगनाथ दूबे / 29

जन्म शताब्दी पर विशेष
- प्रखर आलोचक ❑ शची रानी गुर्टू / 32
- ठुमरियों की छलकती भावपूर्ण रसधार—अतीत से फ़िल्मों तक ❑ के.एल. पाण्डेय / 37

कविताएँ
- नीलोत्पल रमेश की कविताएँ / 40
- अशोक अंजुम के पाँच गीत / 42
- विजयलक्ष्मी विभा की तीन कविताएँ / 45
- स्नेह मधुर की पाँच कविताएँ / 47
- रंजना खरबन्दा की एक कविता / 51
- ए.के. अस्थाना की दो कविताएँ / 52
- आवरण—1 / नीलाम्बुज सरोज की कविता
- आवरण—2 / संजय शौक की ग़ज़ल

आलोचना
- वर्तमान बेरोजगारी का नया कलेवर और 'अन्वेषण' उपन्यास की प्रासंगिकता ❑ डॉ. पूजा मदान / 53

पुस्तक समीक्षा
- बोलती आँखें ❑ रत्नकुमार सांभरिया / 56

गतिविधि
- प्रतिबन्धित साहित्य के पूरी तौर से सामने आने से हमारा इतिहास बदलेगा ❑ डॉ. वर्षा कुमारी / 58

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष 48 ❑ अंक 54—55
❑ अगस्त—सितम्बर, 2023

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
प्रमुख सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **शिशिर**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

सम्पादकीय परामर्श : ❑ **अंशुमान राम त्रिपाठी**
अपर निदेशक, सूचना
❑ **डॉ. मधु ताम्बे**
उपनिदेशक, सूचना
❑ **जितेन्द्र प्रताप सिंह**
सहा. निदेशक, सूचना

अतिथि सम्पादक : ❑ **कुमकुम शर्मा**
❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**
उपसम्पादक, सूचना

आवरण : **अन्तरिक्ष**
भीतरी रेखांकन : **सिद्धेश्वर और रीतिका**
सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
मो. : 9565449505, 8960000962
ईमेल : upmasik@gmail.com
दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522—2239132—33, 2236198, 2239011

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये
❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये
❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रुपये
❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

—सम्पादक

आवर्तन

मेरे भीतर पूरा आसमान समाया है
फिर भी खाली है बहुत जगह
समुद्र के लिए
नदियों के लिए
पृथ्वी के लिए
सारा ब्रह्मांड भी अगर समा जाय
तो भी खाली रहेगा मेरा मन
प्रेम के लिए

—सुभाष राय
सम्पादक —जन संदेश

प्रेम ईश्वर का नियम है, एक ऐसी सभ्यता जिसे ईश्वर ने गढ़ा है हम जीते इसलिए हैं कि प्रेम कर सकें और सही तरीके से जीना सीख सकें, नफरत से भरा हृदय प्रेम समझ ही नहीं सकता। प्रेम के लिए चाहिये खाली मन, जहां प्रेम की पवित्रता को भरा जा सके। लेबनानी कवि मिखाइल नईमी अपनी पुस्तक 'द बुक ऑफ मीरदास' में कहते हैं यदि आज खुद के प्रति ईमानदार हैं तो सबसे पहले आपको उससे प्रेम करना सीखना होगा जिससे नफरत करते हैं और जो आपसे नफरत करता है, उससे आपको वैसे ही प्रेम करना होगा जैसा कि आप खुद से प्रेम करने वाले के साथ करते हैं आपको समझना होगा कि प्रेम करना आपका गुण नहीं है, यह भोजन पानी, प्रकाश और हवा से भी बड़ी जरूरत है।

प्रेम से रचा—बसा समाज एक सभ्य सुशिक्षित समाज के रूप में विकसित होता है वहां भेदभाव की दीवारें नहीं पनपतीं। ऐसे समाज की बुनावट को तोड़ पाना मुश्किल होता है। हमें अपनी परम्पराओं से सीखना होगा। सनातन धर्म के मूल तत्व के भी पुर्नपाठ की आज ज़रूरत है। हमारा सनातन धर्म एक जीवन शैली है जो हमें निःस्वार्थ निश्छल प्रेम और समर्पण सिखाता है। वहाँ तो प्राणिमात्र से प्रेम करने की बात कही गई है।

इस अंक में गौतम चटर्जी, अखिलेश मयंक, योगीन्द्र द्विवेदी, रामनगीना मौर्य, महावीर अग्रवाल, रंजना जायसवाल, रंगनाथ दुबे, शुभा आदि की रचनायें हैं। कविताओं में नीलोत्पल रमेश, अशोक अंजुम, विजय लक्ष्मी 'विभा', स्नेह मधुर, नीलाम्बुज सरोज, संजय शौक हैं। अंक कैसे लग रहे हैं बताइयेगा।

● कुमकुम शर्मा

झूठी मेधा और अवदान का अवसान

❑ गौतम चटर्जी

"आर्टिफिशियल इन्टेलिजेन्स' के लिए हिन्दी में शब्द गढ़ा जा सकता है झूठी मेधा। गूगल की 'कृत्रिम होशियारी' से बेहतर शब्द रहेगा 'झूठी मेधा'। वैसे भी अंग्रेजी के 'इन्टेलिजेन्स' शब्द का ग्रीक मूल अर्थ है सम्यक दृष्टि या पर्सेप्शन और लैटिन मूल में इसका क्रिया पद अर्थ है समझने की क्षमता। व्युत्पत्ति के भारतीय मूल में इसे ही मेधा कहा गया है और संस्कृत में इसके लिए 'धी' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द रूप है।

इस झूठी मेधा के सक्रिय हो जाने से अमेरिका के फिल्म जगत में परेशानी आ गयी है। परेशानी बड़ी है। कलाकारों के हाथ से काम छिन गये हैं, लेखकों के काम कम हो गये हैं क्योंकि उनके काम जैसे पटकथा लिखना, दृश्य सोचना आदि अब यह झूठी मेधा कर दे रही है। याद आ रहा, जब दुनिया में मशीन का युग आ रहा था तो गान्धी जी ने कहा था इससे आदमी के हाथों से काम छिन जायेंगे। यहां आदमी पर मशीन को वरीयता न दें। इसी विचार को चार्ली चैप्लीन फिल्म 'मॉडर्न टाइम्स' में अपने ढ़ंग से प्रस्तुत करते हैं। 'पैगाम' में विषय भी यही था। लेकिन गान्धी जी की बात सुनी नहीं गयी। मशीन ने प्रायः आदमी को विस्थापित कर दिया। यह बात है पिछली शती के तीस और चालीस के दशक की और अब सक्रिय है झूठी मेधा। अब यह भारत में भी सक्रिय होने को उत्सुक है। या कहें उसकी उत्सुकता सक्रिय हो चुकी है। काम और कम होंगे। बेरोजगारी और बढ़ेगी। जनसंख्या और बेरोजगारी का समानुपात सामने आता जायेगा। 1974, 75 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गान्धी ने जनसंख्या वृद्धि को रोकने की बात कही थी। तब भी बात अनसुनी की गयी थी। यहां थोड़ी देर

ज़ाहिर है नया कुछ कहने के लिए मेधा या प्रतिभा प्रथम शर्त है। यही सच्ची मेधा है। जब भी मेधा होगी, अवदान सामने आयेगा। मौलिकता की मुस्कुराहट सर्वव्यापी होगी। मेधा अपने लिए कम जीती है। इन मेधाओं के कारण ही देश के सारे शीर्षस्थ सम्मान पिछली शती के अन्तिम दिनों तक गरिमामय होते गये, होते रहे। इन मेधाओं और उनके सम्मानों के कारण ही हम उनके अवदान से परिचित और प्रेरित होते रहे।

ठहरकर इसी से जुड़ते एक और तथ्य को हम देख सकते हैं। आजादी के बाद देश में कला और साहित्य तथा विज्ञान और दर्शन की मेधा को सम्मानित करने के लिए कई सरकारी और सांस्थानिक पुरस्कारों की व्यवस्था की गयी। इसे अवार्ड भी कहते हैं और अलंकरण भी। कई अलंकरण तो किसी मेधा के नाम पर भी शुरु किये गये जो अभी तक जारी है। प्रायः सभी सम्मानों के लिए तब मुख्य तौर पर यह देखा जाता था कि किसी भी क्षेत्र विशेष में उस मेधा का अवदान क्या है। अवदान से आशय वही था जो अब भी है कि उस मेधा ने उस क्षेत्र में ऐसा क्या किया है जो उससे पहले तब तक नहीं हुआ है। शोध या पुनर्नवा भी इसी का अंश है। विज्ञान या गणित के क्षेत्र में अवदान के मुख्यार्थ को आसानी से समझा जा सकता है कि इस क्षेत्र में इस मेधा ने नया क्या जोड़ा है या कहा है। जाहिर है नया कुछ कहने के लिए मेधा या प्रतिभा प्रथम शर्त है। यही सच्ची मेधा है। जब भी मेधा होगी, अवदान सामने आयेगा। मौलिकता की मुस्कुराहट सर्वव्यापी होगी। मेधा अपने लिए कम जीती है। इन मेधाओं के कारण ही देश के सारे शीर्षस्थ सम्मान पिछली शती के अन्तिम दिनों तक गरिमामय होते गये, होते रहे। इन मेधाओं और उनके सम्मानों के कारण ही हम उनके अवदान से परिचित और प्रेरित होते रहे।

पिछले दो दशकों में सम्मान वही हैं लेकिन उनकी गरिमा लगातार घटती गयी है। कारण है, सम्मान दिये गये, लोग सम्मानित होते गये लेकिन अवदान कुछ भी सामने नहीं आया। मेधा होती तो अवदान भी होता। मेधा और अवदान समानुपाती हैं। अवदान का अर्थ अब यह होता गया है कि हमारी कितनी किताबें प्रकाशित हुईं, हमने कितनी फिल्में बनायीं या उन पर लिखा, हमने कितने नाटक किये, हमने संगीत की कितनी मंच प्रस्तुतियां दीं आदि इत्यादि। साथ ही हम कितनी बार विदेश गये, कितने साहित्यिक मंचों से रचनाएं पढ़ीं। और फिर हम उस व्यक्ति से कितना जुड़ सके जो समिति में है और जो मुझे पुरस्कार देगा। फिर मैं समिति में हूंगा। या फिर हम कितना पैसा बना पायें। यह पिछले दो दशकों के हासिल का तानाबाना है जो अवदान की जगह पर है, अवदान नहीं। यह पीढ़ी सम्मान के बारे में पहले सोचती और योजना बनाती है, रचना के बारे में व्यूह बाद में रचती है। झूठी मेधा कुछ भी क्यों न कर ले, वह सूर्यास्त के सौन्दर्य को हृदयांकित नहीं कर सकती। वह कविता नहीं लिख सकती। अब तक लिखी गयी कविताओं की सांख्यिकी और सरणियों में से छांटकर उनके आधार पर एक या अनेक कविताओं का निर्माण कर सकती है, रच नहीं सकती क्योंकि यह मेधा झूठी है, आर्टिफिशियल है। इसलिए अमेरिकी फिल्म कलाकारों को डरना नहीं चाहिए। झूठी मेधा नयी फिल्म के लिए कोई नया दृश्य नहीं सोच सकती। वह जब भी सोचेगी, अब तक रचे गये दृश्यों के स्टॉक में से लेकर ही सोचेगी। वह मौलिक नहीं सोच सकती, नया नहीं रच सकती।

यह पीढ़ी सम्मान के बारे में पहले सोचती और योजना बनाती है, रचना के बारे में व्यूह बाद में रचती है। झूठी मेधा कुछ भी क्यों न कर ले, वह सूर्यास्त के सौन्दर्य को हृदयांकित नहीं कर सकती। वह कविता नहीं लिख सकती। अब तक लिखी गयी कविताओं की सांख्यिकी और सरणियों में से छांटकर उनके आधार पर एक या अनेक कविताओं का निर्माण कर सकती है, रच नहीं सकती क्योंकि यह मेधा झूठी है, आर्टिफिशियल है। इसलिए अमेरिकी फिल्म कलाकारों को डरना नहीं चाहिए। झूठी मेधा नयी फिल्म के लिए कोई नया दृश्य नहीं सोच सकती। वह जब भी सोचेगी, अब तक रचे गये दृश्यों के स्टॉक में से लेकर ही सोचेगी। वह मौलिक नहीं सोच सकती, नया नहीं रच सकती।

रच सकती तो हमारे पास आज हिन्दी में निर्मल वर्मा, कुंवर नारायण या श्रीकान्त वर्मा की मेधा सा कम से कम एक कथाकार या कवि तो होता। उस कोटि का न सही, अपनी कोटि का। अरविन्दन या अदूर या बेनेगल सा कोई फिल्मकार होता। रविशंकर या किशन महाराज सा कोई शिल्पी होता या फिर किशोरी अमोनकर, कुमार गन्धर्व या फरीदुद्दीन डागर सा कोई गायक होता। अवदान का कोई सम्पर्क नहीं झूठी मेधा से। अवदान के अवसान पर सम्मानित होते रहने का अंधा युग है यह तो। आप देखिये, संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में कितना कुछ है, सिवाय रचनात्मक अवदान के। मौलिकता मेधा के होने का प्रथम परिचय है। मौलिकता मेधा के होने का पता है। मौलिकता ही किसी भी अभिव्यक्ति या प्रस्तुति में प्रवाह, रोचकता और प्रभावलाती है। वह अपना रूप स्वयं प्रकट करती है। प्रतिभा का दूसरा नाम है मौलिकता। सिर्फ यही दीर्घ जीवी है और हो सकती है। भवभूति के उत्तर रामचरित की तरह। झूठी मेधा अल्पजीवी होती है। मेधा अपनी मौलिकता में ही मुस्कुराती है। अवदान ही उसका स्वभाव है।

•

पता : एन–11/38, बी, रानीपुर,

महमूदगंज, वाराणसी–221010

मो. : 7052306296

क्या आपने बारिश की खूबसूरती का आनंद लिया?

❑ अखिलेश मयंक

वर्षा, बारिश या बरसात हमारी कृषि का मूलाधार है। इसका समय पर होना खेती की सेहत के लिए जरूरी माना गया है। कहा भी गया है–....का बरखा जब कृषि सुखानी। पर अब पर्यावरण असंतुलन के चलते असमय वर्षा, कम वर्षा या फिर वर्षा की अधिकता की खबरें हमारे सामने हमेशा आती रहती हैं। कभी–कभी तो बारिश तब होती है, जब किसान उसकी प्रतीक्षा करते–करते थक जाता है और खेतों में सूखे के हालात बन जाते हैं। अब तो ये सब हर वर्ष का दस्तूर–सा बन गया है।

अपने बचपन को याद करें, जब लगातार मूसलाधार बारिश के चलते कई–कई दिनों तक भगवान सूर्यदेव के दर्शन नहीं होते थे। बारिश से खेत, बाग, वन, ताल, तलैय्या, नदियां सभी संतृप्त हो जाते थे। ताल, तलैय्या उफना जाती थीं। खेतों में खूब पानी लग जाता था। किसी किसान को ट्यूबवेल से सिंचाई नहीं करनी पड़ती थी। आज के समय में ठीक उसका उल्टा हो रहा है।

तब बारिश में लोगों का मन मयूर नाच उठता था। अब किसी का मन मयूर नहीं नाचता। तब जब कभी वर्षा नहीं होती थी तो उसके लिए पूजा, यज्ञ और काल–कलौटी जैसे देहाती टोटके किए जाते थे। काल–कलौटी जैसे टोटकों में नंग–धड़ंग बच्चों पर उनके घर के लोग पानी डाल देते थे। उसके बाद बच्चे कीचड़ में लोटते थे। माना जाता था कि ऐसा करने से इंद्रदेव प्रसन्न होंगे और बारिश करेंगे। अब ये सब नहीं होता। खत्म–सा हो गया है।

कहा जाता है क त्रेता युग में इंद्रदेव को प्रसन्न करने के लिए ही मिथिलानरेश राज जनक ने खेतों में हल चलाया था। तब जुताई करते समय जमीन में गड़ी एक हंडिया निकलने से उसमें से माता सीता शिशु रूप में निकली थीं। अगर यह कहा जाए कि तब अर्थव्यवस्था का आधार वर्षा ही थी तो कुछ भी गलत न होगा।

अब बारिश के दिनों में किसानों का मन मयूर भले नाचता हो, हम शहरवासियों और हमारे बच्चों पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। पानी बरसता है तो हम सब अपने घर या फ्लैट में बंद हो जाते हैं। ऐसे जैसे बारिश के कहीं शिकार न हो जाएं। ऐसा लगता है कि अगर कहीं भीग गए तो बीमार पड़ जाएंगे। अब

गिने—चुने लोग ही होंगे जो अपनी भाषा में बारिश को 'इन्ज्वाय' करते हैं या अपने बच्चों को करवाते हैं। बाकी तो अपने और अपने बच्चों को 'कीटाणुओं के हमलों' से बचाने में ही लगे रहते हैं।

हमने बचपन में कविता पढ़ी थी—'अम्मा जरा देख तो ऊपर, चले आ रहे हैं बादल... / बाहर निकलूं मैं भी भीगूं चाह रहा है मेरा मन।' तब के बच्चे और लोग बारिश में भीगना चाहते थे। अब हमारा मन बारिश में भीगने को नहीं करता। हमारा दिन घर, गाड़ी, आफिस से में ही बीत जाता है। हमारे पास सांस लेने की फुरसत नहीं है। बारिश में क्या खाक भीगेंगे? हां, कुछ लोग हैं जो बारिश की फोटो सोशल मीडिया पर डाल देते हैं, जिन्हें हम अपने एंड्रायड फोन पर देखकर प्रसन्न हो लेते हैं। खुद आगे बढ़कर मौसम का आनंद लेने का समय हमारे पास नहीं है, इसलिए इन वीडियोज को देखकर हम अपने अतीत को भी याद कर लेते हैं।

आधुनिकता और पैसे कमाने की अंधी दौड़ ने आज के लोगों को बारिश के मौसम का लुत्फ उठाने के लायक नहीं छोड़ा है। वे इसे डिस्टर्बेंस मानते हैं। उन्हें नहीं पता कि गांवों में किसान टकटकी लगाए इंद्रदेव की कृपा की बाट जोह रहे हैं। अगर बारिश नहीं हुई तो उनकी फसलें चौपट हो जाएंगी। सारी आशाओं—आकांक्षाओं के साथ उनकी सारी मेहनत मिट्टी में मिल जाएगी।

हम लोगों की बाद की पीढ़ी को बारिश का आनंद क्या होता है, यह नहीं पता। उन्हें नहीं पता कि हमारे महान ग्रंथों में वर्षा ऋतु का विशद वर्णन किया गया है। वह महाकवि कालिदास हों या तुलसीदास या फिर मलिक मुहम्मद जायसी। इन लोगों ने वर्षा ऋतु का ऐसा वर्णन किया है जो कभी—कभी जन—जन की जुबान पर होता था। मोहन राकेश हों या निर्मल वर्मा या फिर छायावाद के प्रमुख स्तंभ सुमित्रानंदन पंत, उनकी कलमें वर्षा ऋतु पर खूब चली हैं। उन कृतियों ने भी अपने आपको कालजयी की श्रेणी में शामिल करवाया है तो अपने कथ्य और शिल्प के बूते पर। पर अब किसी को न उनके बारे में जानने की फुरसत न ही पढ़ने की। जो प्रजातियां ये सब पढ़ती थीं, वे अब अल्पमत में आ गई हैं। इसी के साथ महाविद्यालयों—विश्वविद्यालयों में साहित्य के विद्यार्थियों को जो हाल है, उससे लगता है कि कुछ ही वर्षों में साहित्य पढ़ने वाली प्रजाति लुप्तप्राय हो जाएगी। उसे संरक्षित करने की आवश्यकता पड़ेगी।

हम लोगों की बाद की पीढ़ी को बारिश का आनंद क्या होता है, यह नहीं पता। उन्हें नहीं पता कि हमारे महान ग्रंथों में वर्षा ऋतु का विशद वर्णन किया गया है। वह महाकवि कालिदास हों या तुलसीदास या फिर मलिक मुहम्मद जायसी। इन लोगों ने वर्षा ऋतु का ऐसा वर्णन किया है जो कभी—कभी जन—जन की जुबान पर होता था। मोहन राकेश हों या निर्मल वर्मा या फिर छायावाद के प्रमुख स्तंभ सुमित्रानंदन पंत, उनकी कलमें वर्षा ऋतु पर खूब चली हैं। उन कृतियों ने भी अपने आपको कालजयी की श्रेणी में शामिल करवाया है तो अपने कथ्य और शिल्प के बूते पर। पर अब किसी को न उनके बारे में जानने की फुरसत न ही पढ़ने की। जो प्रजातियां ये सब पढ़ती थीं, वे अब अल्पमत में आ गई हैं। इसी के साथ महाविद्यालयों—विश्वविद्यालयों में साहित्य के विद्यार्थियों को जो हाल है, उससे लगता है कि कुछ ही वर्षों में साहित्य पढ़ने वाली प्रजाति लुप्तप्राय हो जाएगी। उसे संरक्षित करने की आवश्यकता पड़ेगी।

हम लोग कालिदास की उपमाओं के कायल थे। कहा गया है—'उपमा कालिदासस्य।' तुलसी बाबा के वर्षा ऋतु की 'घन घमंड नभ गरजत घोराधप्रिया हीन डरपत मन मोरा।' जैसी पंक्तियों को हम लोग जब—तब उद्धृत किया करते थे। जायसी के 'बारहमासा' के प्रशंसक थे। खासकर 'सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोलाध्हरियर भूमि कुसुंभी चोला...।' के। आज की पीढ़ी को मोबाइल और वीडियो स्ट्रीमिंग से इतना लगाव है कि साहित्य—फाहित्य उनके लिए फालतू की चीजें हैं। वे साहित्य या वर्षा ऋतु का सौंदर्यशास्त्र नहीं जानते। हां, बारिश होती है तो कमरे का एअर कंडीशनर बंद कर देते हैं। बारिश के बाद उमस बढ़ती है तो उसे ऑन कर लेते हैं। बारिश में भीगने को कौन कहे, घरवाले बाहर निकलने पर पाबंदी लगा देते हैं। उन्हें भी सब पता है। उन्हें पता है कि बारिश में भीगने पर कीटाणु बहुत तेजी से हमला करते हैं। बचपन से ही मम्मा ने यही सिखाया है। कुछ बच्चों का इम्यून सिस्टम वास्तव में कमजोर होता है लेकिन बारिश में भीगना सर्दी, जुकाम और बुखार को बुलावा देना है, यह बात बच्चों के दिमाग में बैठाकर उन्हें जूजू बना देना बेहद घातक है। इसी वजह से बच्चे बारिश में भीगने का आनंद नहीं जानते। हमें अपने बच्चों को प्रकृतिप्रेमी बनाना चाहिए। उन्हें बताना चाहिए कि आधुनिक पद्य में वर्षा

के संपूर्ण स्वरूप का वर्णन अगर कहीं देखना हो तो प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाने वाले सुमित्रा नंदन पंत की इस कविता में देखो। कविता अतुकांत है लेकिन इसमें इस ऋतु के बारे में सब कुछ कह दिया गया है...

वर्षा ऋतु में पर्वत प्रदेश में पल–पल प्रकृति का रूप बदलना/विशाल पर्वतों का हजारों फूल रूपी नेत्रों से दर्पण रूपी तालाब में सौंदर्य को निहारना/मोती की लड़ियों जैसे झाग भरे निर्झरों का झरना/अचानक बादलों का छा जाना/मूसलाधार वर्षा के कारण पूरे दृश्य का ओझल होना/साल के वृक्षों का जमीन में धंसा हुआ प्रतीत होना/ जलवाष्प रूपी धुएँ के छाने से तालाबों का जलता हुआ–सा प्रतीत होना।।

...अर्थात वर्षा ऋतु में प्रकृति थोड़ी–थोड़ी देर पर अपना रूप बदल रही है। विशाल और ऊंचे पहाड़ अपने नेत्रों से तालाब रूपी दर्पण में अपना चेहरा निहार रहे हैं.....वगैरह। कविता अतुकांत होने के कारण गद्य जैसी है, जिसे समझना मुश्किल नहीं है। यह पंत जी के लेखन की कलात्मकता है। जिसके कारण वे प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं।

बारिश को फिल्मों में खूब दर्शाया गया है। 'बरसात की रात' फिल्म तो अपने समय में सुपर–डुपर हिट रही थी। 'जिंदगी भर नहीं भूलेगी वह बरसात की रात...' गाना उस समय के हर युवा की जुबान पर था। अब बारिश को उतने साफ–सुथरे ढंग से दिखाने वाले निर्देशक नहीं रहे। निर्देशक भी बेचारे क्या करें, अब फिल्मों के हिट होने के फार्मूले बदल जो गए हैं। वे उन्हीं फिल्मों पर दांव लगाते हैं जिनसे धुआंधार कमाई के चांसेज हो। फिल्मी दुनिया का गुणा–गणित इक्कीसवीं सदी में काफी हद तक बदल गया है। अब फिल्मों के बहुत सारे राइट्स फिल्म रिलीज होने के पहले ही बिक जाते हैं। हीरो–हीरोइन अब पारिश्रमिक न लेकर सीधे–सीधे कमाई में शेयर लेते हैं। अधिकांश हीरो–हीरोइनों ने तो अपना खुद का प्रोडक्शन हाउस खोल लिया है। वे स्वयं ही निर्माता बन गए हैं। ऐसे में कोई निर्देशक साफ–सुथरी फिल्म बनाकर खामखां रिस्क क्यों ले?

क्या आपने अपने टैरेस, किचेन गार्डेन या बॉलकनी में बैठकर बारिश को टकटकी लगाकर देखा है? अगर देखा होगा तो उस असीम सुख को आप केवल महसूस कर सकते हैं, व्यक्त नहीं कर सकते। यह सुख मन को सुकून देता है, आपके मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर करता है, आपके मस्तिष्क को तरोताजा बनाता है। इसी तरह, क्या आप खुली छत पर कभी बारिश में भीगे हैं? अगर हां, तो उस समय आपके मन में जो आह्लाद उत्पन्न हुआ होगा, वह भी अव्यक्त ही होगा। ये सब तरीके हमारा प्रकृति के साथ सीधा कनेक्शन बनाते थे। जिससे हम कट–से गए हैं। प्रकृति से हमारी कनेक्टिविटी जितनी ही बढ़ेगी, हम उतने ही स्वस्थ और प्रसन्नचित रहेंगे।

आज के दौर में जरूरत इस बात की है कि हम ये सब बातें अपने बच्चों को बताएं। उन्हें प्रकृति के साथ साक्षात्कार करने को, उसके साथ एकाकार होने को कहें। उन्हें बताएं कि आषाढ़, सावन और भादों के महीने वर्षा के होते हैं। भादों की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भगवान कृष्ण ने दुष्टों के दलन के लिए अवतार लिया था। जिन्होंने भरी राजसभा में अपनी मुंहबोली बहन द्रौपदी की लाज बचाई थी। बच्चों को यह भी बताएं कि वर्षा ऋतु का एक त्यौहार रक्षाबंधन भी है, जिसका बहनों को बेसब्री से इंतजार रहता है। उन्हें बहन और उससे जुड़े रिश्तों का महत्व बताएं। अगर आप अपने बच्चों को इतना कुछ सिखा ले गए तो विश्वास मानिए बारिश की खूबसूरती को देखने वाली दृष्टि उनमें स्वतः विकसित हो जाएगी।

आज के दौर में जरूरत इस बात की है कि हम ये सब बातें अपने बच्चों को बताएं। उन्हें प्रकृति के साथ साक्षात्कार करने को, उसके साथ एकाकार होने को कहें। उन्हें बताएं कि आषाढ़, सावन और भादों के महीने वर्षा के होते हैं। भादों की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भगवान कृष्ण ने दुष्टों के दलन के लिए अवतार लिया था। जिन्होंने भरी राजसभा में अपनी मुंहबोली बहन द्रौपदी की लाज बचाई थी। बच्चों को यह भी बताएं कि वर्षा ऋतु का एक त्यौहार रक्षाबंधन भी है, जिसका बहनों को बेसब्री से इंतजार रहता है। उन्हें बहन और उससे जुड़े रिश्तों का महत्व बताएं। अगर आप अपने बच्चों को इतना कुछ सिखा ले गए तो विश्वास मानिए बारिश की खूबसूरती को देखने वाली दृष्टि उनमें स्वतः विकसित हो जाएगी।

•

पता : ए–274/ई, शिवाजीपुरम्, सेक्टर–14,
इन्दिरा नगर, लखनऊ–226016
मो. : 8400645735

दुआ

❑ योगीन्द्र द्विवेदी

माहौल में जाने कहां की बोरियत भरी हुई थी। लोगों के चेहरे पर खिलखिलाहटें नदारद, सिर्फ किसी भी तरह काम निपटाने की जल्दी। मानो वे आदमी नहीं मशीन हों। किसी से कोई सवाल करो तो उत्तर में दो–चार सवाल और। ऐसे में भीड़ में भी दूर–दूर तक पसरी नीम खामोशी। ऊपर से चिलचिलाती धूप, पसीना और शरीर में जहां–तहां चिपचिपाहट। फिर भी, अनिकेत को देर शाम दिल्ली निकलने से पहले अपनी पिछली नौकरी से सम्बन्धित कुछ डाक्यूमेंट्स जुटाने थे। दिल्ली में नयी नौकरी ज्वाइन करने में उनकी जरूरत पड़ सकती थी। पर कितना परेशान कर लिया पुरानी कम्पनी वालों ने। कई बेहतरीन साल उसने दिये थे उस कम्पनी को। जब तक काम किया, सभी उसके कामकाज के कायल थे, मगर, जैसे ही उसने दूसरी बेहतर कम्पनी में जाने का फैसला लिया, अधिकारियों ने मुंह ही फेर लिया। पहले तो तमाम ऊंच–नीच समझाया था, फिर पराये शहर की तमाम परेशानियों का हवाला दिया था, मगर जब वह नहीं माना तो वे 'जैसी तुम्हारी मर्जी' कह कर खामोश हो गये थे।

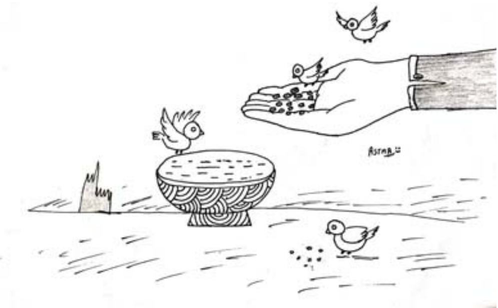

अल्तमश को भी उसी के साथ दिल्ली जाना था। इस समय वह उसी के घर की ओर भागा जा रहा था। साथ ले जाने वाला बैग और अन्य सामान वह घर से निकलने के बाद सुबह ही

उसके घर रख आया था। उस समय वह भी किसी काम से निकला हुआ था, सो इस समय जब दोनों दोस्त मिले, तो बातों का ऐसा सिलसिला चला कि कोई भी थमने का नाम न ले। इस बीच, अल्तमश की अम्मी कब नाश्ता रख गयी थीं और कब वह ठंडा हो गया, पता ही नहीं चला। बातों–बातों में अनिकेत ने बताया कि कैसे एक जगह सिगनेचर के दौरान सिर्फ 'अनिकेत' लिखने पर अधिकारी ने उसे टोक दिया था – 'पूरा नाम क्यों नहीं लिखते, अनिकेत पांडे।' और कोई समय होता, तो वह बहस भी करता, परन्तु जल्दी होने के कारण उसने नाम के साथ 'पाण्डे' बढ़ा दिया था। अधिकारी के चेहरे पर मानो कोई किला फतह करने का भाव झलका, परन्तु अनिकेत खीझ से गड़ सा गया था।

वही खीझ इस समय फिर अनिकेत के चेहरे पर पसर गयी थी। माहौल की बोरियत को तोड़ने के लिहाज से अल्तमश ने कहा – 'छोड़ो यार, ये सब आज–कल की जिंदगी में न सिर्फ शामिल हो रहा है, बल्कि यही सब चल रहा है। अब इंसानियत की खूबियों का कम, इन्हीं का चलन ज्यादा है। धर्म दिल की गहराइयों में नहीं रहा, सड़कों पर आता जा रहा है।

फिर अनिकेत ने दिल्ली चलने की तैयारियों की बात छेड़ दी। अनिकेत को जहां दिल्ली में नयी नौकरी ज्वाइन करनी थी, वहीं अल्तमश प्रमोशन पर जा रहा था। महानगर की आपाधापी, रहने–खाने की समस्याएं ही समस्याएं (गर बैंक एकाउंट में ठीक–ठीक बैलेंस न हो तो)। फिलहाल तो एक दोस्त के यहां जाकर सामान रख देंगे। फिर वीकेंड पर मकान की खोज, खाने–पीने की नियमित व्यवस्था भी।

बातों–बातों में अनिकेत ने अल्तमश को बताया कि पिछली कम्पनी के बास भी महानगरों की इन समस्याओं की चर्चा कर रहे थे। भीड़ से बचने की सलाह भी दे रहे थे – 'कब क्या सनक सवार हो जाय उस पर। कोई हुसकाने वाला हो (जिनकी अब कोई कमी नहीं है), फिर जो चाहो करा लो भीड़ से।' किसी को भी एक पल रुक कर सोचने की फुरसत नहीं कि हिंसा और एक दूसरे से घृणा किसी भी समस्या का इलाज नहीं। माहौल में गूंजते उत्तेजक नारे, जैसे धर्मों का मतलब सिर्फ इतना ही रह गया है। खून में सने, गालियों में डूबे।

बातों–बातों में अनिकेत ने अल्तमश को बताया कि पिछली कम्पनी के बास भी महानगरों की इन समस्याओं की चर्चा कर रहे थे। भीड़ से बचने की सलाह भी दे रहे थे – 'कब क्या सनक सवार हो जाय उस पर। कोई हुसकाने वाला हो (जिनकी अब कोई कमी नहीं है), फिर जो चाहो करा लो भीड़ से।' किसी को भी एक पल रुक कर सोचने की फुरसत नहीं कि हिंसा और एक दूसरे से घृणा किसी भी समस्या का इलाज नहीं। माहौल में गूंजते उत्तेजक नारे, जैसे धर्मों का मतलब सिर्फ इतना ही रह गया है। खून में सने, गालियों में डूबे।

अल्तमश ने कहा कि गलत नहीं कह रहे थे बास। कभी भी किसी साधारण सी बात पर दंगा, 'माब लिचिंग' भी। अचानक अनिकेत के मुंह से निकला– 'यार, तू मुझे कुरान पाक की दो–चार आयतें रटा दे और मैं तुझे दो–चार श्लोक। बाबा ने बचपन में रटाये थे। बुरे वक्त में जान बचाने में बहुत काम आयेंगे। 'दोनों ही एक साथ खिलखिला कर हंस पड़े।

उनकी यह हंसी आज की नहीं, लगभग 20 साल पुरानी थी। स्कूली दिनों की। फिर दोनों ने हायर एजूकेशन तो अलग–अलग ली, परन्तु उनका मेल–मिलाप हमेशा बना रहा। छुट्टियों में एक आता, तो दूसरा दोस्त मिल गया, तो क्या बात, नहीं भी मिलता तो एक–दूसरे के घर जाकर पूरे परिवार का हालचाल लेते। दोनों ही घरों में एक–दूसरे की पहचान 'बेटे' जैसी ही थी। कुछ कम का सवाल ही नहीं। बेटा, सिर्फ बेटा। होली–दीवाली में अल्तमश की मस्ती देखते ही बनती और ईद–बकरीद में अनिकेत यों सजता–धजता जैसे ये त्योहार भी न मनाये तो जिंदगी में कुछ छूट सा जायेगा।

मगर कुछ सालों से जाने क्या हो रहा था। कुछ कम्पनियां त्योहार को सिर्फ त्योहार मानने से गुरेज करने लगी थीं। देश और धरती की मिली–जुली तहजीब को पहचानने से भी। पिछले दिनों तो हद ही हो गयी थी। ईद पर अनिकेत को छुट्टी ही नहीं मिली, सिर्फ उसके गिने–चुने मुस्लिम साथियों को ही मिली थी। अनिकेत ने बिना देरी किए खुद ही सी.एल. ले ली थी, सो इस ईद पर भी दोनों दोस्त साथ थे। उसी के बाद उसने कम्पनी छोड़ने का मन बना लिया था, फिर जल्द ही छोड़ भी दी थी। तभी अल्तमश ने भी प्रमोशन पर दिल्ली जाने की खबर दी थी।

यकायक अम्मी आकर चिल्लायीं—'मैं जानती थी कि तुम दोनों को बातों के अलावा कुछ नहीं सूझता। चलो, मैं नाश्ता फिर से गरम करके ला रही हूं। हाथ—मुंह धोकर तैयार भी होते चलो। दूर की जर्नी है।'

अनिकेत और अल्तमश दोनों को ही मां की झिड़की सही लगी और वे बातचीत का सिलसिला खत्म कर सामान सहेजने में लग गये। इसी बीच, वह फिर से नाश्ता ले आयी थीं, लंच बाक्स में खाने—पीने की कुछ चीजें रात के लिए भी सहेज दी थीं।

ट्रेन पकड़ने का समय धीरे—धीरे नजदीक आ रहा था। गजब की उमस थी, तनाव भरी। मानो बाहर की उत्तेजना और डर अब घरों के भीतर घुस कर उनकी खिलखिलाहटों और निष्छलता को भी अपने आगोश में लेना चाह रहे हों और हम असहाय से उसे देखने को विवश हो। कोई कुछ नहीं बोल रहा था। याद आती है हिटलर के दिनों की ब्रेख्त की वह कहानी, जिसमें पति—पत्नी एक ही डिनर टेबल पर काफी देर तक बैठे रहने के बावजूद एक दूसरे से कुछ नहीं बोलते, चेहरे पर एक अजीब तरह का डर और तनाव समेटे हुए। बावजूद यह जानते हुए भी कि इंसानियत की जड़े इतनी कमजोर नहीं है, जैसे उसके सामने समर्पण का मन बना रहे हो, बिना लड़े ही।

तभी अम्मी ने हाथ—मुंह धोये। शायद वह नमाज से पहले वजू कर रही थीं। फिर उन्होंने कमरे के एक कोने में जानमाज बिछाया, सलीके से बैठीं और खुदा की इबादत में उनके दोनों हाथ असीम विस्तार के सामने फैल गये। शायद वे सब की सलामती की दुआ मांग रही थीं। घर परिवार से लेकर देश दुनिया में फैले सभी के सुरक्षित और खुशहाल वजूद के लिए। कुछ ही समय में उन्होंने नमाज पूरी की, चेहरे पर दुआ मांगने के लिए उठे हाथ फेरे और मानो फिर से घर की अपनी छोटी सी दुनियां में लौट आई हों।

तभी अम्मी ने हाथ—मुंह धोये। शायद वह नमाज से पहले वजू कर रही थीं। फिर उन्होंने कमरे के एक कोने में जानमाज बिछाया, सलीके से बैठीं और खुदा की इबादत में उनके दोनों हाथ असीम विस्तार के सामने फैल गये। शायद वे सब की सलामती की दुआ मांग रही थीं। घर परिवार से लेकर देश दुनिया में फैले सभी के सुरक्षित और खुशहाल वजूद के लिए। कुछ ही समय में उन्होंने नमाज पूरी की, चेहरे पर दुआ मांगने के लिए उठे हाथ फेरे और मानो फिर से घर की अपनी छोटी सी दुनियां में लौट आई हों—'अच्छा, अब तुम लोग चलो। अभी स्टेशन पहुंचते—पहुंचते एक घण्टा लग जायेगा। जाने कहा कि भीड़ सड़कों पर निकल आती है सुबह—शाम। ऊपर से जाम, लड़ाई झगड़े और दंगा फसाद का खतरा अलग से।'

अनिकेत और अल्तमश को भी लगा कि मां सही कह रही हैं। दोनों ने एक बार फिर हाथ—मुंह धोकर बाल वगैरह ठीक किए और यात्रा के लिए तैयार थे अपने—अपने बैग लिए। तभी अम्मी अंदर कमरे में गयीं। लौटी तो उनके हाथ में कुछ था, शायद पैसे रहे हो। उन्होंने बारी—बारी से दोनों की सलामती की दुआ पढ़ी, नजर उतारने के अंदाज में दोनों के सिर पर कई बार हाथ घुमाये। अम्मी के चेहरे पर उदासी थी, जैसे कई डर एक साथ आकर सामने खड़े हो और कोई भी कुछ बोला तो रो देंगी। अल्तमश और अनिकेत दोनों ने ही एक साथ ढ़ांढस बंधाया — 'आप बिल्कुल परेशान न हो अम्मी, हम साथ—साथ ही रहेंगे और एक दूसरे का पूरा ख्याल रखेंगे। दिल्ली पहुंच कर फोन करते हैं।

अरसे बाद अम्मी हंस दी। विदा करते समय उदासी भी बहुत अच्छी नहीं। अल्तमश और अनिकेत ने अपने बैग उठाये और सड़क पर आ गये। एक आटो को रोका और बैठ गये। अम्मी अभी भी बालकनी से बच्चों को जाते देख रही थीं। विदा में दोनों ही ओर से उठे हाथ तब तक हिलते रहे, जब तक आटो तेजी से काफी आगे नहीं निकल गया।

अचानक अल्तमश और अनिकेत दोनों ने ही एक साथ महसूस किया कि हवा अब उतनी बोझिल नहीं है, जितनी कुछ समय पहले लग रही थी। दूर कहीं अजान गूंजी, फिर पास ही कहीं हमेशा की तरह किसी मंदिर की घंटियां बजी — साथ—साथ। दोनों दोस्त भी एक साथ मुस्कुरा दिए। चलते समय सलामती के लिए ही दुआ करती मां, साथ—साथ मस्जिद की अजान और मंदिर की घंटियों की गूंज और बिना किसी भेदभाव के खिलखिलाते लाखों—लाख चेहरे। अलग—अलग, पर एक ही रंग में रंगे चेहरे!

•

पता : 355/123 ख, आलमनगर, लखनऊ

मो. : 9305894597

घर वापसी

❑ पेटे हेमिल
(अनुवादक : रेणुका अस्थाना)

घर वापसी–मूलतः "गोइंग होम" का हिन्दी अनुवाद है। इसके लेखक–पेटे हैमिल हैं। लेखक उन्नीसवीं सदी में जन्मे अमेरिका के एक प्रसिद्ध लेखक, निबंधकार और पत्रकार थे। "न्यूयार्क पोस्ट" और न्यूयार्क डेली न्यूज के संपादन के साथ ही पेटे उसमें नियमित एक कालम भी लिखते थे। "गोइंग होम" उनकी लिखी छोटी कहानियों में से एक संवेदनापूर्ण कहानी है। इनकी मृत्यु 5 अगस्त 2020 को हुई है।

पेटे हेमिल

वे छः मित्र थे। जिनमें तीन लड़के और तीन लड़कियां थीं। वे न्यूयार्क से लाउडर डेल घूमने जा रहे थे। लाउडर डेल–फ्लोरिडा के दक्षिणी–पूर्वी तट पर बसा एक सुंदर शहर जिसका समुद्री किनारा सूरज के प्रकाश में सुनहरा चमकता रहता है। रास्ते में खाने–पीने के लिए उन्होंने अपने पास कुछ सैंडविच और वाइन, एक कागज के थैले में डाल रखा था।

बस, धुंधली सी यादें ठंढे न्यूयार्क को पीछे छोड़ती चली जा रही थीं और उनकी आंखें लाउडर डेल के चमकते समुद्री किनारे और समुद्र की उठती–गिरती लहरों के सपने में खोती जा रही थीं।

वे खुश थे। रोमांचित थे। कुछ देर बाद उन्होंने ध्यान दिया कि बस में ठीक उनके सामने एक व्यक्ति अकेला बैठा हुआ है। चुपचाप ! अपने आप में खोया। उसने इतना ढीला–ढाला सूट पहन रखा है जो पहना हुआ कम और उसके ऊपर टंगा हुआ अधिक लग रहा है। उसके चेहरे के हाव–भाव से उसकी उम्र का पता लगाना उनके लिए मुश्किल हो रहा था।

वे उस चुपचाप बैठे व्यक्ति को जानने के लिए उत्सुक भी थे पर चुप थे। काफी रात बीतने पर बस, वाशिंगटन के बाहरी हिस्से में बने एक होटल, हावर्ड जॉनसन के पास रुकी। यहां पर कतार से कई होटल थे जहां टूरिस्ट बसें रुका करती थीं। सारे यात्रियों के साथ वे छः भी बस से बाहर निकल आए। आया नहीं तो वह अकेला बैठा आदमी जिसका नाम विंगो था। वह बस में ही अपनी सीट पर बैठा

था। उन छः दोस्तों को बहुत आश्चर्य हुआ कि वह आया क्यों नहीं ? और अब वे उस सुन्दर समुद्री किनारे अथवा उसकी उठती–गिरती लहरों की जगह उसी आदमी को सोचने लगे। कल्पना करने लगे कि यूं चुप–सा बैठा व्यक्ति क्या हो सकता है ? शायद किसी समुद्री जहाज का कप्तान, अपनी पत्नी से दूर भागा हुआ या कोई सिपाही जो अपने घर वापस जा रहा है ? पर वे कुछ समझ नहीं पाए। बस के भीतर आकर उनमें से एक लड़की उसके बगल में बैठ गयी और हंसते हुए स्वयं अपना परिचय देते हुए उससे कहा–"हम सारे दोस्त फ्लोरिडा जा रहे हैं। मैंने सुना है यह बहुत सुन्दर जगह है।"

"हां है।" वह यूं बोला जैसे जिसे उसने भूलने की कोशिश की थी अब याद कर रहा हो।

"थोड़ी सी वाइन लेंगे ?" लड़की ने दोबारा पूछा। वह हंसा और लड़की से लेकर एक गहरी घूंट ले उसे धन्यवाद देकर फिर से अपनी चुप्पी में वापस चला गया।

लड़की अपने दोस्तों के पास वापस जाकर बैठ गयी और विंगो एक गहरी नींद में लुढ़क गया।

दूसरी सुबह लड़की फिर से जाकर विंगो के पास बैठ गयी, उसे जानने के लिए। कुछ देर तो वह चुप बैठा रहा फिर उसने अपनी कहानी सुनायी कि पिछले चार वर्षों से वह न्यूयार्क के जेल में था। और अब, इन चार वर्षों के बाद वह अपने घर लौट रहा है।

"आपकी शादी हो गयी है ?" लड़की ने पूछा।

"मैं नहीं जानता।"

"आप नहीं जानते ?" लड़की को उत्तर अजीब–सा लगा। पर उसने कोई जवाब नहीं दिया और विंगो चुपचाप बैठा, कुछ देर बाहर की ओर देखता रहा।

"जब मैं जेल में था, मैंने अपनी पत्नी को एक चिट्ठी लिखी थी। मैंने उसे बताया था कि मैं, बहुत दिनों के लिए उससे दूर जा रहा हूँ। और यदि तुम इसे न समझ सको या बच्चे हमेशा मेरे बारे में पूछें, अथवा मेरा जाना तुम्हें चोट पहुंचाए तो एक काम करना ? मुझे भूल जाना–कोई नया साथी ढूंढ लेना–

मैंने यह भी कहा कि वह एक बहुत ही अच्छी औरत है। सच में बहुत अच्छी। और कहा मेरे बारे में भूल जाना।

मैंने उसको यह भी कहा कि मुझे कुछ भी लिखने या कहने की जरूरत नहीं है और उसने, साढ़े तीन वर्ष वही किया। उसने कभी मुझे कोई चिट्ठी नहीं लिखी–न बात की–

"और तुम अब घर जा रहे हो ? बिना सब कुछ जाने, कि उसने क्या किया या–

"हां ! विंगो ने शर्माते हुए कहा।

"पिछले सप्ताह जब मुझे यह पता चला कि मैं पैरोल पर छूटने वाला हूँ तो मैंने उसे फिर से एक चिट्ठी लिखी।"

"हम ! ब्रन्सविक में रहते थे। यह न्यूजर्सी में है।''

"विंगो ने थोड़ा ठहरकर लड़की को समझाते हुए कहा। "यह जैक्सनोविले के पहले ही पड़ता है। वहां पर एक बड़ा–सा ओक का पेड़ है। आप जैसे ही नगर में घुसेंगे वह आपको दिखायी देगा।"

"मैंने अपनी पत्नी को लिखा है–यदि वह मुझे वापस पाना चाहती है तो वह उस ओक के पेड़ पर एक पीली रूमाल रख देगी। और मैं ? उसे देखकर घर वापस आ जाऊंगा। पर यदि वह मुझे वापस नहीं चाहती तो जाने दो–

"फिर यदि कोई रुमाल नहीं। तो मैं ! वापस चला जाऊंगा–''

"वाह ! लड़की ने कहा। सच में वा–''

अपने साथियों के पास जाकर लड़की ने विंगो की सारी कहानी उन्हें सुनायी और वे सारे अब बेसब्री से ब्रन्सविक पहुंचने की प्रतीक्षा करने लगे। उनके सामने, विंगो की सुनायी कहानी, उसकी पत्नी, तीन बच्चे चलचित्र की तरह घूम रहे थे। जिसमें पत्नी–सामान्य रुप से एक सुन्दर स्त्री थी और आशुचित्र से तीन बेतरतीब बच्चे।

बस चली जा रही थी। अब वे ब्रन्सविक से बत्तीस किलोमीटर दूर थे। इसलिए वे अब बस की दाहिनी खिड़की के पास की सीट पर जाकर बैठ गए। जिससे उन्हें ओक पेड़ स्पष्ट दिख सके। बस में अब कोई शोर नहीं था। वहां थी विंगो की सुनायी कहानी की उन खोये हुए वर्षों की सघन चुप्पी। विंगो ने आँखें बंद कर ली थीं। उसका चेहरा यूं तना हुआ था जैसे उसने एक्स–कान मास्क लगा लिया हो। जैसे एक और निराशा के लिए अपने आपको दृढ़ता से तैयार कर रहा हो। ब्रन्सविक अब सोलह किलोमीटर दूर था।

फिर आठ किलोमीटर–और फिर अचानक सारे साथी खड़े होकर अपनी सीट से बाहर आ गए। चिल्लाते–शोर मचाते–नाचते। वे बहुत खुश थे पर विंगो ? वह अवाक था। वह अवाक था ओक पेड़ को देखकर क्योंकि वहां सिर्फ एक पीली रुमाल नहीं थी बल्कि वह पेड़ ही पीली रुमालों से ढंका हुआ था। बीस–तीस या शायद सौ रुमालों से ढंका वह ओक पेड़ एक स्वागत बैनर की तरह लग रहा था, जो हवा में लहरा रहा था।

वे युवा साथी खुशी से शोर मचा रहे थे, और वह बूढ़ा चोर अपनी सीट से उठकर बस के सामने से जगह बनाता घर की ओर चल दिया।

•

पता : एल–207, आशियाना आँगन, पोस्ट–भिवाड़ी,
जिला–अलवर, राजस्थान–301019
मो. : 9982448126

हस्बेमामूल

❑ राम नगीना मौर्य

जब भी आप कहीं की यात्रा पर होते हैं तो सहयात्रियों संग आपको किसिम–किसिम के अनुभव भी मिलते हैं। बस्स...नजर पारखी, कोलम्बसी होनी चाहिए। अमीर मीनाई की ये खूबसूरत पंक्तियां है न...''कौन सी जा है जहां जलवा–ए–माशूक नहीं? शौक–ए–दीदार अगर है तो नजर पैदा कर।'' बहरहाल, आपको जबलपुर से लखनऊ तक की ट्रेन यात्रा का एक दिलचस्प अनुभव साझा कर रहा हूँ।

वाकया ये है कि रिश्ते में ही, जबलपुर में आयोजित एक विवाह समारोह में शामिल होने का सुअवसर था। शादी के अगले दिन, रात्रि की ट्रेन से मुझे जबलपुर से लखनऊ के लिए वापस लौटना था। बताता चलूँ, यात्रा में अमूमन मेरे साथ कहानी, उपन्यास, संस्मरण या यात्रा–वृत्तान्त आदि से सम्बन्धित कोई–न–कोई किताब अवश्य होती है। वैसे भी, सोने से पहले कुछ–न–कुछ पढ़ने की पुरानी आदत जो है। इस बार मेरे साथ सुनील खिलनानी की किताब का हिन्दी अनुवाद 'भारतनामा' थी। ट्रेन चलने के बाद बाकी मुसाफिरों की तरह मैंने भी ऊपरी बर्थ पर चादर बिछाई और पढ़ने के वास्ते अपने सिरहाने रखे बैग से यह पुस्तक निकाल, बुकमार्क हटाते पढ़ने लगा।

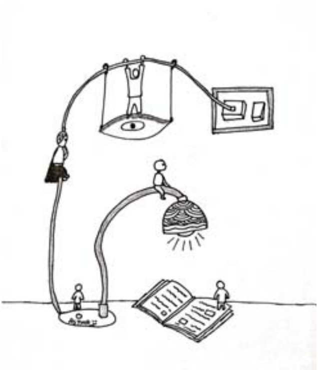

निचली सीट पर आमने–सामने जो मुसाफिर बैठे थे, उनमें एक लगभग साठ–बासठ बरस की अधेड़ महिला तो दूसरी लगभग बाइस–तेइस बरस की नवविवाहिता तथा एक लगभग पैंसठ–अड़सठ बरस के अधेड़ पुरूष तो दूसरा तीस–बत्तीस साल का युवक था। उनके साथ ही लगभग पांच से सात बरस के दो बच्चे भी थे। ये बच्चे उन अधेड़ महिला, पुरूष को नाना, नानी कहके सम्बोधित कर रहे थे। उनके बीच हो रही बातचीत से ये सभी एक ही परिवार के

लग रहे थे। महिलाएं आपसी बातचीत में, तो दोनों पुरूष अपने–अपने मोबॉयल–फोन से बतियाने में मशगूल थे। ट्रेन छूटने के लगभग पन्द्रह–बीस मिनट बाद ही इस परिवार की महिलाओं ने अपने बैग से खाने के दो बड़े–बड़े टिफिन और फोम की कुछ प्लेटें निकाल लीं। पानी की बोतलें इन्होंने डिब्बे में आने से पहले ही प्लेटफॉर्म से खरीद रखीं थीं। दोनों महिलाओं ने दोनों पुरूषों व बच्चों को प्लेटों में खाना परोसा और अपने लिए भी भोजन परोसने के साथ ही पुनः घर–परिवार से जुड़े मसलों और खुशनुमा मौसम के बारे में चर्चारत हो गये। सुस्वादु भोजन की महक से वातावरण गमक उठा।

अभी पन्द्रह–बीस मिनट ही हुए होंगे कि किसी के जोर–जोर से खांसने की आवाज से मेरा ध्यान भंग हुआ। ध्यान दिया तो निचली सीट पर बैठी वो नवविवाहिता, इतनी तेज खांस रही थी कि खांसते–खांसते हांफने लगती। साथ बैठे, लेटे, अधलेटे अन्य यात्रीगण भी अचकचाते हुए उसकी तरफ देखने लगे। उसे जोर–जोर से खांसते देख ऐसा लग रहा था मानो पारिवारिक सदस्यों संग बोलते–बतियाते, भोजन करते समय पानी या भोजन का कोई टुकड़ा उसकी सांस नली में फंस गया हो। उसके घर–परिवार वालों ने अपनी–अपनी तरह से उसका प्राथमिक इलाज करना शुरू कर दिया। अधेड़ महिला उसकी पीठ सहलाने लगीं। साथ बैठे युवक ने जल्दी से थर्मस के ढक्कन में ही पानी उड़ेलते हुये, उसकी ओर बढ़ाया। अधेड़ सज्जन ने उसे परेशान न होने व गहरी–गहरी सांस लेने का सुझाव दिया। मेरे बगल वाले ऊपरी बर्थ पर लेटे सहयात्री ने जल्दी–जल्दी अपने बैग से कफ–ड्रॉप का एक पत्ता निकालते, ''इसे चूस लीजिए। फौरन आराम मिलेगा''... कहते दो गोलियां उस नवविवाहिता की ओर बढ़ाया।

महिलाएं आपसी बातचीत में, तो दोनों पुरूष अपने–अपने मोबॉयल–फोन से बतियाने में मशगूल थे। ट्रेन छूटने के लगभग पन्द्रह–बीस मिनट बाद ही इस परिवार की महिलाओं ने अपने बैग से खाने के दो बड़े–बड़े टिफिन और फोम की कुछ प्लेटें निकाल लीं। पानी की बोतलें इन्होंने डिब्बे में आने से पहले ही प्लेटफॉर्म से खरीद रखीं थीं। दोनों महिलाओं ने दोनों पुरूषों व बच्चों को प्लेटों में खाना परोसा और अपने लिए भी भोजन परोसने के साथ ही पुनः घर–परिवार से जुड़े मसलों और खुशनुमा मौसम के बारे में चर्चारत हो गये। सुस्वादु भोजन की महक से वातावरण गमक उठा।

बहरहाल...लगभग बीस–पच्चीस मिनट की इन उथल–पुथल भरी कवायदों के बाद नवविवाहिता की तबीयत संभल गयी थी। यद्यपि इस छोटे से अंतराल में उस परिवार एवं आसपास बैठे यात्रियों के साथ–साथ मुझे भी थोड़ी असुविधा महसूस हुई, लेकिन यात्रा आदि में इस तरह के प्रसंग अनपेक्षित नहीं होते। हस्बेमामूल सी बातें हैं। अतः ऐसी असुविधाओं के लिए किसी से भी खेद जताने की उम्मीद करना बेमानी होगी। खैर...माहौल शान्त हो गया था। निचली बर्थ पर बैठे उस परिवार के सभी सदस्यों ने भोजन खत्म कर लिया था। भोजन के कुछ देर बाद इस परिवार के अधेड़ पुरूष और अधेड़ महिला सदस्य लेटने की तैयारी में बगल वाली निचली बर्थ पर चादर–तकिया सजाने में लग गये। नवविवाहिता और वो युवक अभी भी बतकुच्चन के मूड में थे। भोजन करने में तो वो दोनों बच्चे ना–नुकर कर ही रहे थे, भोजन करने के बाद वे अभी भी सीटों के बीच में छुपते, दौड़ते, उधम मचाए हुए थे। हां! यह स्थिति अन्य यात्रियों के लिए असुविधाजनक हो सकती थी। ऐसे में डिब्बे के मुसाफिरों संग मुझे भी तत्काल नींद कहां आनी थी।

''देखो बच्चों! शोर मत मचाओ। ऊपर वाली सीट पर जो अंकल जी लेटे हैं, कुछ पढ़ रहे हैं। उन्हें डिस्टर्ब हो रहा होगा। तुम अच्छे बच्चे हो ना...?'' बुजुर्ग महिला ने पता नहीं क्या सोचते–समझते उन बच्चों को प्यार से डांटा।

मैंने भी साथ ले आयी अपनी किताब इस उम्मीद में पुनः खोल ली थी कि शायद पढ़ते–पढ़ते नींद आ जाये। यद्यपि मेरे सीट के बगल वाली लाइट खराब थी, लेकिन सामने के ऊपरी बर्थ की लाइट जल रही थी, जिससे मुझे उसकी रोशनी में पढ़ने में कोई खास दिक्कत नहीं हो रही थी। वो सज्जन फिलहाल अपने स्मॉर्ट–फोन में व्यस्त थे। परन्तु उस सीट पर लेटे सज्जन ने थोड़ी देर बाद अपनी लाइट बुझा दी। शायद सोने की तैयारी में होंगे। ऐसे में यात्रा के दौरान किताब पढ़ने की रही–सही मेरी उम्मीद भी जाती रही। हालांकि, निचली सीट पर बैठे दोनों बच्चों और बोगी में अन्य यात्रियों के भी बच्चों के लगातार शोर–गुल, धमा–चौकड़ी मचाने की वजह से साफ था कि डिब्बे में लेटे यात्रीगण तब–तक आराम से नहीं सो सकते थे, जब–तक कि ये बच्चे भी थक–हार कर सो नहीं

जाते। मेरे सामने की ऊपरी बर्थ पर लेटे सज्जन भी अब करवटें बदलते दिखे।

'...और बुझाओ लाइट। चले थे लेटने। मेरी पढ़ाई बन्द करने...' ऐसी परिस्थितिजन्य असुविधाजनक स्थिति में मैंने मन–ही–मन बुदबुदाते, साथ वाले ऊपरी सीट पर लेटे सज्जन को लानत भेजते कोसा। चूंकि लाइट बुझी होने के कारण किताब पढ़ने का सवाल ही नहीं था, सो नींद आने तक, स्वभावतः मैंने अपने स्मॉर्टफोन में आये नोटिफिकेशन्स आदि चेक करना शुरू कर दिया।

स्मॉर्टफोन बन्द करने के बाद यूँ ही, या कह लीजिए कौतुहलवश मेरी नज़र निचली सीटों पर गयी। अधेड़ महिला, जो लेटे हुए बुजुर्ग सज्जन के बगल ही सीट पर बैठी थी, बैठे–बैठे ऊंघ रही थी। दूसरी निचली सीट पर लेटे युवक के बगल बैठी वो नवविवाहिता, हल्के गुनगुनाते हुये अपने लम्बे–लम्बे नाखूनों पर नेल–पॉलिश लगाने में मशरूफ थी। उसके चेहरे पर उभर आये इत्मिनान भाव को देखते लग ही नहीं रहा था कि थोड़ी देर पहले खांसने–सांस लेने में हो रही कठिनाई के कारण उसके समक्ष जीवन–मरण का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। अगल–बगल की सीटों पर कुछ यात्री अपने–अपने स्मॉर्टफोन्स में व्यस्त थे, तो कुछ बैठे–बैठे ऊंघ रहे थे। कुछ यात्री गहरी निद्रा में सो गये थे।

नवविवाहिता के बगल अधलेटा सा वो युवक, जो निश्चय ही उसका पति होगा, बार–बार अपना हाथ नवविवाहिता की खुली कमर तक ले जाता, लेकिन नेल–पॉलिश खराब न हो, वो नवविवाहिता अपनी कुहनी से उसका हाथ हटा देती। नवविवाहिता कभी उसे आंखें दिखाती, तो कभी सिर्फ मुस्कियाकर ही रह जाती। चूंकि, नींद नहीं आ रही थी, सो अदबदा कर उन दोनों की इन हरकतों, चुहलबाजियों पर ध्यान चला जा रहा था। हालांकि मैं अपनी तरफ से पर्याप्त सतर्क भी था, कारण कि सुनते हैं, महिलाओं का 'सिक्स्थ–सेंस' गजब का होता है। उन पर किनकी नज़र है, वे कुछ देर में ताड़ ही लेती हैं। ऐसे में यदि उसने नजर उठा कर ऊपर की तरफ कनखियों भी देख लिया तो गलत संदेशा जा सकता था। उसी क्रम में मैंने आगे देखा कि बावजूद नवविवाहिता के मना करने के, उस युवक की उंगलियां नवविवाहिता की कमर पर, इरादतन, फितरतन या शायद आदतन दौड़ ही जातीं। ऐसी हरकतें वे शायद स्वभाववश या उम्र के तकाज़ेवश कर रहे होंगे, मैंने अंदाजा लगाया था। हालांकि, अपनी जान यह स्थिति असुविधाजनक कही जा सकती है या नहीं, कुछ कह नहीं सकता।

डिब्बे में ज्यादातर बत्तियां बुझी हुईं थीं। बस्स...केवल गैलरी में एक या दो हल्की लाइट्स जल रही थीं। इसके अलावा डिब्बे में जो भी थोड़ी–बहुत रोशनी बिखरी हुई थी, वो मुसाफिरों के स्मॉर्टफोन से निकल रही रोशनी की वजह से भी हो सकता था। चूँकि मुझे नींद नहीं आ रही थी, और साथ ले आयी किताब भी पढ़ पाने का अवसर नहीं था, सो मेरे तईं अपने इर्द–गिर्द, नजर बचाते, ताका–झांकी स्वाभाविक ही था। इसे किसी कर अन्यथा नहीं लिया जा सकता। हस्बेमामूल सी बातें हैं। भला इसमें असुविधाजनक क्या हो सकता है?

मेरे दूसरी तरफ ऊपरी बर्थ पर लेटी, फोन पर एक महिला के बतियाने की आवाज बहुत देर तक आती रही। पता नहीं किससे बतिया रही थी? बतियाते हुए बीच–बीच में, सामने वाले को लगातार धमकाती, कभी रोती, तो कभी हंसने लगती। हालांकि, उसकी बातों से यह भी अंदाजा लग रहा था कि वो या तो अपने ब्वॉयफ्रेंड से बतिया रही थी, या अपने पति से? उसकी बातें खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही थी। हां! डिब्बे में सो रहे बाकी यात्रियों पर उसने इतना एहसान अवश्य किया कि रोने–धोने–धमकाने के सत्रावसान के बाद अब वो धीमी आवाज़ में ही बतियाने लगी थी। तथापि, फोन पर उसकी बातचीत अहर्निश चलती रही। चूंकि वो मेरे बर्थ के दूसरी तरफ थी, इसलिए फोन पर उसकी बातचीत मेरे लिए उतनी असुविधाजनक नहीं थी, जितनी कि उसके सामने, आसपास बैठे, सोए यात्रियों के लिए रही होगी। खैर...।

मेरा ध्यान भंग हुआ, मोबॉयल पर आये संदेश से। पत्नी ने व्हाट्सएप पर गुडनाइट संदेश भेजा था। इधर से मैंने भी गुडनाइट लिखा। इस तरह हमारी गुडनाइट हुई, तत्पश्चात् मैं अपना मोबॉयल बन्द कर सोने का प्रयास करने लगा।

किसी के जोर–जोर से बोलने की आवाज सुनकर मेरी नींद खुली। नीचे, साइड–बर्थ पर एक नवयुवक और एक बुजुर्ग बैठे किसी गूढ़ विषय पर चर्चारत थे। ये दोनों नये पैसेन्जर लगे। शायद इसी स्टेशन से चढ़े हों? ट्रेन किसी स्टेशन पर रूकी हुई थी। प्लेटफॉर्म पर अंधेरा सा होने के कारण, खिड़की से बाहर झांकने पर स्टेशन का नाम पढ़ा जाना मुश्किल था। हां! प्लेटफॉर्म पर कुछ यात्रीगण जरूर दौड़ते–भागते नजर आये। अगल–बगल की सीटों पर लेटे कुछ यात्रियों के खर्राटे भी साफ–साफ सुने जा सकते थे। मैंने अपने स्मार्टफोन में देखा, रात के तीन बजकर तेइस

मिनट हुए थे। नींद में ख़लल पड़ा था। यह सचमुच असुविधाजनक स्थिति थी।

''रूकिये, देखिये तभी आगे बढ़िये। इसे दुनियावी सिद्धान्त मान लीजिये। जहां तक मैं समझता हूँ...जीवन में उतार–चढ़ाव, धूप–छांव तो लगा ही रहता है...हा–हा–हा।'' बुजुर्ग ने अपने अंदाज़ में उस नवयुवक को समझाते हुए बात आगे बढ़ाई।

''कहीं की भी यात्रा पर निकलने से पहले अजीब तरह की बेचैनी महसूस होती है। जहां के लिए निकलना है, वहां जाने पर सब कुछ ठीक–ठाक तो रहेगा न? जिस कार्य के लिए निकले हैं, वह समय से सम्पन्न हो जायेगा न? रास्ते में कुछ उल्टा–सीधा तो घटित नहीं होगा न?... आदि–आदि।'' नवयुवक ने प्रत्युत्तर में कहा।

''ये सिर्फ तुम्हारी ही समस्या नहीं हो सकती है। बहुतों के साथ ऐसा होगा। पर कुछ लोग कह देते हैं, तो कुछ इसे सहजभाव से आत्मसात कर लेते हैं। अब मुझे ही देखो! कार में सवार हुआ तो ऐसा लगा कि ड्राइवर बहुत धीमें गाड़ी चला रहा है, सोचा कि उसे तेज चलाने को कहूँ। लेकिन अगले ही पल यह भी ध्यान आया कि तेज चलाने के लिए कहने पर वो कहीं लड़–भिंड़ न जाय। इससे सारा दोष मुझ पर ही आयेगा। फिर, क्या पता ड्राइविंग के समय उस चालक को बेवजह का रोक–टोक पसन्द न हो। उसे गाड़ी तेज चलाने के लिए कहने के बजाय कार की सवारी का आनन्द ही लिया जाय। वैसे भी, मंजिल नजदीक आने लगे तो निश्चिन्तता का आभास होने ही लगता है। नतीजा यह रहा कि घर से तुम्हारे बाद निकलने के वाबजूद, मैं भी समय से स्टेशन पहुंच गया...हा–हा–हा।'' बुजुर्गवार ने दुनियावी ज्ञान का पिंटारा खोला था।

''शायद आप ठीक कह रहे हैं। लेकिन मैं तो मोबॉयल पर बार–बार आ रहे एक फोन कॉल की वजह से परेशान हो गया था। किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिए घर से निकलिए, और ऐसे में यदि कोई अनसेव्ड नम्बर या अवांछित कॉल आपके मोबॉयल–स्क्रीन पर चमकने लगे, जिसे आप पसन्द नहीं करते हैं, तो मूड का अपसेट हो जाना स्वाभाविक है।'' नवयुवक ने मानो बुजुर्गवार के सुझावों पर सफाई दी हो।

''तुम कर भी क्या सकते हो? नियति को नहीं बदल सकते। हां! लेकिन एक–दो बार और ऐसी कॉल आने पर, उसे अटेण्ड करना है या नहीं, तुम खुद तय कर सकते हो। यदि बहुत जरूरी होगा तो सामने वाला दुबारा–तिबारा भी कॉल करेगा। ऐसे में कॉल अटेण्ड करने से पूर्व तुम्हारे मन–मस्तिष्क में एक खाका सा बन चुका होगा। तुम खुद को इस बात के लिए तैयार कर चुके होंगे कि कॉल अटेण्ड करने के उपरान्त तुम्हें उससे क्या कुछ कहना है? इससे तुम्हारा काम आसान हो जायेगा, और हो सकता है अनावश्यक तनाव से छुटकारा भी महसूस हो...हा–हा–हा।'' कहते ठठाकर हंसते, बुजुर्गवार ने एक बार फिर, अपने ही तरीके अपने अनुभव साझा किये।

''पर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं मानो वे कितने खलिहर हैं। किसी को कब फोन मिलाना है, बिना उचित समय देखे–समझे, कभी भी फोन मिला देंगे। ऐसे में बड़ी असहज स्थिति उत्पन्न हो जाती है। तुर्रा ये भी कि अगले ही पल फोन अटेण्ड न करने पर नाराज़गी व्यक्त करते मेसेज भी कर देंगे।'' कहते, नवयुवक इस बार कुछ क्षुब्ध–सा नज़र आया था।

''देखो...सामने वाले को जज मत करो। वो करो, जो तुम्हारी प्राथमिकताएं हैं। सामने वाला तो अपने अनुसार सोचने, करने के लिए स्वतंत्र है, जैसे कि तुम भी। ऐसे विध्नसंतोषियों से निबटने का तो यही तरीका है कि उनका फोन अटेण्ड करिये, और कोई–न–कोई व्यस्तता बताते, फिलवक्त बात करना टाल दीजिये। हमारे कार्यों की प्राथमिकता तय करने का अधिकार सिर्फ हमें है, किसी और को नहीं। कोई नाराज हो, होता रहे। ऐसी बातों, ऐसे लोगों

''देखो...सामने वाले को जज मत करो। वो करो, जो तुम्हारी प्राथमिकताएं हैं। सामने वाला तो अपने अनुसार सोचने, करने के लिए स्वतंत्र है, जैसे कि तुम भी। ऐसे विध्नसंतोषियों से निबटने का तो यही तरीका है कि उनका फोन अटेण्ड करिये, और कोई–न–कोई व्यस्तता बताते, फिलवक्त बात करना टाल दीजिये। हमारे कार्यों की प्राथमिकता तय करने का अधिकार सिर्फ हमें है, किसी और को नहीं। कोई नाराज हो, होता रहे। ऐसी बातों, ऐसे लोगों की कभी परवाह नहीं करनी चाहिए।'' **बुजुर्गवार की ये दुनियावी बातें सुनकर मेरी यह धारणा एक बार फिर मजबूत हुई कि कुछ सवाल, जवाब के लिए नहीं किये जाते, बल्कि यह जांचने–परखने के लिए किये जाते हैं कि सामने वाला उन्हें किस खूबसूरती से टाल जाता है।**

की कभी परवाह नहीं करनी चाहिए।'' बुजुर्गवार की ये दुनियावी बातें सुनकर मेरी यह धारणा एक बार फिर मजबूत हुई कि कुछ सवाल, जवाब के लिए नहीं किये जाते, बल्कि यह जांचने–परखने के लिए किये जाते हैं कि सामने वाला उन्हें किस खूबसूरती से टाल जाता है।

''हां! देखिये तो, एक और दिलचस्प बात बताना तो मैं भूल ही गया। जल्दबाजी में मैंने अपने शर्ट का एक बटन ऊपर–नीचे बन्द कर दिया, और उसी क्रम में सारे बटन बन्द करते जब आखिरी बटन बन्द कर रहा था, तो इस बात का एहसास हुआ। मुझे सारे बटन खोलने और फिर से बन्द करना पड़ा, जिससे एक छोटे से काम में दोगुना समय जाया हो गया। शायद इसीलिए कहते होंगे...जल्दी का काम शैतान का होता है–हें–हें–हें।'' नवयुवक ने इस बार शायद स्टेशन पर पहुंचने में देरी हो जाने के कारणों के बारे में यह नवीनतम जानकारी साझा की थी।

''खैर, कुछ भी हो। अगर तुमने जल्दबाज़ी नहीं दिखाई होती तो ये ट्रेन छूट ही जाती, और इंटरव्यू भी। अब आगे से ध्यान रखना कि जब भी कहीं जाना हो, तो घर से निकलने में कम–अज–कम पन्द्रह मिनट का मार्जिन जरूर रखो। क्या पता रास्ते में कहीं जाम आदि मिल जाये। 'मेन एट वर्क...आगे रास्ता बन्द है' टाइप कोई बोर्ड ही दिख जाये, तो क्या करोगे? ठिकाना तो अगली सांस का भी नहीं... हाँ–हाँ–हाँ।'' ठठाकर हंसते, यह हिदायत देते उन बुजुर्गवार की देहभाषा से ऐसा लगा मानो वे बहुत बड़े ज्ञानी हैं।

बुजुर्गवार की बातों, देहभाषा में यह भी गौरतलब था कि वो कुछ भी कहने से पहले दार्शनिक नजरिया अपना लेते। बात की शुरूआत ठठाकर करते और खत्म भी ठठाकर, बेसाख्ता हंसते ही करते। इस तरह ज्ञान देने के अति–उत्साह में उनके मुंह से थूक निकलने के बजाय सभ्य भाषा में कहूँ तो 'मोतियों की बौछार–सी' हो रही थी, जो सीधे उस नवयुवक के मुंह पर पड़ने के कारण वो अपने कमीज की बांह बार–बार मुंह पर ले जाते पोंछ लेता।

''जी सर। यह बात तो है। लेकिन इसके लिए मैं उस टैम्पो वाले का भी तहेदिल से शुक्रगुजार हूँ, जिसने मेरे अनुरोध पर अपना टैम्पो बेतहाशा दौड़ाते–भगाते, 'शॉर्टकट' अपनाते, मुझे ठीक समय पर स्टेशन पहुंचा ही दिया।'' ये कहते हुये युवक ने मानो राहत की सांस ली।

''ये तुम्हारा नज़रिया हो सकता है, सार्वभौमिक नहीं। वैसे तुमने बढ़िया कही, 'शॉर्टकट' वाली बात। ये 'शॉर्टकट' की आदत भी अजीब शै है, लोग कामकाज़ से लेकर लिखने–पढ़ने तक में धड़ल्ले से इस्तेमाल कर रहे हैं। बहरहाल...यह रिस्की गेम भी हो सकता था...हॉ–हॉ–हॉ।'' कहते बुजुर्गवार फिर ठठाकर हंसने लगे।

चूंकि वो बुजुर्गवार थोड़ा ऊंची आवाज में बोल रहे थे, जिससे यह आभास हो रहा था कि आसपास बैठे लोगों को बलात्, वे अपने इन दुर्लभ जीवनानुभवों में शामिल करना चाहते हैं। पास बैठे एक–दो यात्रियों ने तो हूँ–हाँ करते उनकी बातों का समर्थन भी किया, जिससे उनका उत्साहवर्धन होना स्वाभाविक था। बताता चलूँ...साथ ले आयी किताब 'भारतनामा' में भी संजोग से एक दिलचस्प पैरा, जो मंजिल तक पहुंचने के लिए 'शॉर्टकट' अपनाने की आदत से जुड़ा था, मैंने थोड़ी देर पहले ही पढ़ा था, अचानक याद आया, तो उनकी बातों से मुतमइन भी हुआ।

बुजुर्गवार की बातों, देहभाषा में यह भी गौरतलब था कि वो कुछ भी कहने से पहले दार्शनिक नजरिया अपना लेते। बात की शुरूआत ठठाकर करते और खत्म भी ठठाकर, बेसाख्ता हंसते ही करते। इस तरह ज्ञान देने के अति–उत्साह में उनके मुंह से थूक निकलने के बजाय सभ्य भाषा में कहूँ तो 'मोतियों की बौछार–सी' हो रही थी, जो सीधे उस नवयुवक के मुंह पर पड़ने के कारण वो अपने कमीज की बांह बार–बार मुंह पर ले जाते पोंछ लेता।

क्या पता ऐसा उनका स्वभाव ही हो? होते हैं ऐसे लोग, और गाहे–बगाहे, आते–जाते टकराते भी रहते हैं। जाहिर है ऐसे तुमुल–कोलाहल भरे माहौल में फिर एक बार नींद तो उचटनी ही थी। उनकी बातचीत से मुझ सहित अन्य यात्रियों की भी नींद उचट गयी थी। असमय की उत्पन्न यह स्थिति घोर असुविधाजनक थी, लेकिन क्या कर सकते थे...? मन मसोसकर रह गये। वो जगप्रसिद्ध उक्ति याद हो आई...'पीपुल प्लॅान बॅट आलमाइटी प्लान्स अदरवाइज।'

ट्रेन के लखनऊ पहुँचने का समय पौने दस बजे का था। ऐसे में इरादा यही था कि कम–अज–कम आठ–साढ़े आठ बजे तक तो अपनी सीट पर सुकून से सो ही सकता हूँ। लेकिन अभी सुबह के लगभग छः ही बजे होंगे, जब मैं टॉयलट से होकर वापस अपनी सीट पर आया तो देखता हूँ

कि निचली सीटों पर बैठे यात्री परिवार के वो अधेड़ सज्जन और नवयुवक तो अभी लेटे हुए हैं, परन्तु निचली सीटों पर बैठी वो दोनों महिलाएं उठकर बैठ गयीं हैं। नवविवाहिता ने झट अपने बैग से कंघी निकालकर बाल संवारे, तो अधेड़ महिला ने साथ ले आयी बोतल के पानी से मुंह पर छींटा मारते, तौलिये से पोंछने के बाद अपने चेहरे पर हल्के हाथों क्रीम लगाई। तत्पश्चात् दोनों बच्चों को जगाकर उनके भी मुंह पर पानी के छींटे मारने के बाद उन्हें जूते–मोजे पहनाकर, उनके बालों में कंघी फिराते, उन्हें राजा बाबू, रानी बिटिया सरीखे सजाने–संवारने के उपरान्त, उनके हाथों में दो–दो क्रीम बिस्किट पकड़ा दिये।

अब उस अधेड़ महिला ने गैलरी से गुजरते हुए चाय वाले को आवाज देते चार चाय का ऑर्डर दिया। चाय वाले ने कागजी कपों में जब तक चाय ढ़ाला, तब तक नवविवाहिता, जो अब तक बालों में कंघी करते, क्रीम–पौंडर आदि लगाकर बन–ठन चुकी थी, ने सीट पर ही अखबार बिछाते, अपने बैग से चिप्स–पापड़ और बिस्कुट के पैकेट निकालते, उसे खोल दिये। दोनों छोटे बच्चे बिस्कुट–चिप्स आदि खाते–खाते, अपने–अपने स्मॉर्टफोन में कोई गेम खेलने में व्यस्त हो गये। चाय वाले को पैसे चुकताकर, उसे चलता कर अब वो दोनों महिलाएं भी चिप्स–पापड़ व बिस्कुट का नाश्ता करते, बतकुच्चन में ऐसे मगन हो गयीं, मानो वे ट्रेन में नहीं, अपने घर के चौबारे में बैठी हों। ऐसे माहौल में सुबह आठ–साढ़े आठ बजे तक सोने का मेरा प्रोग्राम ज़ाहिरन तौर भाड़ में जा चुका था। उन दोनों महिलाओं की देहभाषा से साफ लग रहा था कि उन्हें मुझे या आसपास बैठे अन्य यात्रियों की सुविधा–असुविधा से कुछ भी लेना–देना नहीं था। जाहिर है... उनके तईं ये हस्बेमामूल सी बातें थीं।

उसी मध्य मेरे मोबॉयल–स्क्रीन पर मेसेज एलर्ट दिखा। देखा तो पत्नी ने व्हाट्सएप पर गुडमॉर्निंग संदेश भेजा था। इस तरह हमारी गुडमार्निंग हुई।

चूंकि, अब सोने का तो कोई सवाल ही नहीं था, सो बजाय किसी सुविधा–असुविधा रूपी पशोपेश के, मानवीय–व्यवहार के इन्हीं पहलुओं पर शोधपरक नजरिये मैंने खुद को व्यस्त रखने के प्रयास का फैसला किया।

सुबह जब लखनऊ प्लेटफॉर्म पर उतरने लगा तो मेरे आगे ही एक युवक के साथ चलते, हंसते–बतियाते जो महिला मेरे सामने से निकली, उसकी आवाज कुछ जानी–पहचानी सी लगी। किसी मादक परफ्यूम का भभका सा उठा था। ...'ओ–हो...! तो यही मोहतरमा हैं, जो मेरे बर्थ के दूसरी तरफ ऊपरी बर्थ पर लेटी, रात–भर किसी से फोन पर बतियाती रहीं थीं।' हालांकि इस समय उसकी आवाज इतनी महीन थी कि दूर से आती कोई मधुर धुन सरीखी कानों में पड़ रही थी। उस महिला को उस युवक संग चलते, यूँ बतियाते–खिलखिलाते देख ऐसा कहीं से भी नहीं लग रहा था कि मोबॉयल पर रात–भर की उसकी अहर्निश बातचीत से उसके साथ बैठे अन्य यात्रियों को हुई असुविधाओं का उसे तनिक भी खेद हो। मानो उसके तईं ये हस्बेमामूल सी बातें हों।

'मुस्कुराइये कि आप लखनऊ में हैं।' प्लेटफार्म से बाहर निकलते ही सामने की दीवाल पर यह चिर–परिचित सी पट्टिका देखते, चेहरे पर मोहक सी मुस्कान का आ जाना स्वाभाविक ही था। राहत भी महसूस हुई कि चलो, टाइम से अपने शहर तो पहुँच ही गये। रात गई बात गई। हालांकि अगले ही पल बैग के सभी पॉकेट्स टटोलते, यह जानकारी होते कि मैं अपने स्मॉर्टफोन का ओरिजनल–चॉर्जर ट्रेन में ही भूल आया हूँ, मन थोड़ा दुःखी भी हुआ। चूंकि इस यात्रा में हुए लाजवाब अनुभवों से मन लबरेज तो था ही, सो थोड़ी–बहुत हुई इन असुविधाओं के लिए भला क्यों शिकायत होगी...? आखिर इस यात्रा का हासिल ये लाजवाब अनुभव भी तो है। हस्बेमामूल सी बातें हैं।

बहरहाल...ये सब बातें तो हुईं मेरी इस ट्रेन यात्रा से जुड़े कुछ दिलचस्प अनुभवों के बारे में। यात्रा में सहयात्रियों के रूप में उन महिलाओं, उन पुरूषों और उन बच्चों के व्यवहार, स्वभाव आदि के बारे में। मध्यरात्रि में ट्रेन में आये उस नवयुवक और बुजुर्गवार के व्यवहार, स्वभाव के बारे में। हां! सफर में मिलने वाले नये अनजान मुसाफिरों से मिलने, उनसे बोलत–बतियाते, उनकी बातें सुनने का मजा ही कुछ और है। अब स्वाभाविक तौर आपके जेहन में इन पंक्तियों के लेखक के स्वभाव के बारे में भी जानने की उत्कंठा होगी। तो मित्रों, यह कार्य मैं आप पाठकों पर छोड़ता हूँ। उम्मीद है आप सभी की प्रतिक्रियाएं अवश्य मिलेंगी। क्या नहीं...?

•

पता : 5/348, विराज खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226010, उ.प्र.

मो. : 9450648701

सेंध

❑ महावीर अग्रवाल

डेगान, ने गुमटी वाले रमेसर को चाय का पैसा देते हुए मन ही मन हिसाब लगाया..सिरिफ साठ टका का ही आमदनी हुआ आज। तीस टका तो महाजने ले लेगा रिक्शा का भाड़ा। बचेगा का..कद्दू ? बाहर अभी भी झिरी झिरी पानी बरस रहा था। उतरते दिसंबर की पूस की रात ! तीस पर शाम को तेज हवा के साथ जम कर बारिश हो चुकी थी। पूरा वातावरण ठंड से कनकना रहा था। जाड़े के मौसम में यूं भी अंधेरा उतरते ही बाजार में चहल पहल सिमटने लगती है। आज तो मौसम भी नई नकेल डाले बैल की तरह बिदका हुआ था। आठ ही बजे थे पर एकाध गुमटियों को छोड़ कर बस स्टैंड परिसर की सारी दुकानें बंद हो चुकी थीं। पूरा वातावरण पुराने भुतहा कब्रिस्तान की तरह सांय सांय कर रहा था।

डेगान ने दृष्टि में चातकी तासीर भर कर गुमटी के चाले से मुंडी बाहर निकाली। शायद भूली भटकी कोई सवारी मिल जाये लास्ट टाइम में। सवारी तो नहीं दिखी पर हवा में उड़ती ठंडी फुहारों ने चेहरे पर नाविक के तीर की तरह धावा बोल दिया।

'अब हमहूँ दुकान बंद करेंगे भैया। ई जाड़ा ससुर बर्दास्त नहीं हो रहा।' रमेसर ने हथेली पर मसली खैनी को दूसरी हथेली से फटफटाया और चुटकी भर डेगान की ओर बढ़ाते हुए मजबूरी ज़ाहिर की। डेगान भारी निःश्वास छोड़ते हुये गुमटी से निकलने वाला ही था कि हड़बड़ाते भीतर आते हवलदार पांडेय जी से टकरा गया। हवलदार को देखते ही दोनों के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगीं।

'एतना जाड़ा में कैसे ड्यूटी करते हैं साहेब..?' प्रकट में रमेसर खींसे निपोरते हुए हिनहिनाया।

'साहब भी ससुरे धरम करम भूला बैठे। बाभन देवता को एतना कष्ट..!' डेगान भी घिघियाते हुए अंतरा जोड़ने में पीछे नहीं रहा।

मंडल का सोटा हम लोगन के पीछे पड़ गया है। अब तुम लोग की पूजा–आरती उतर रही है। तुम्हारे बेलूर लोगों को पकड़ पकड़ कर कुर्सी पर बैठा रहे हैं।

पांडेयजी ने तो अपनी तईं गहरा कटाक्ष छोड़ा था, पर डेगान

की मिचमिचाती आंखों में एक मुश्त रंगीन सपनों की चमक भर आयी। मास्टर नगेंदर भी यही बात कह रहे थे की सरकार अपने लोगों को ऊंची कुर्सी पर बैठाने का कानून बना रही है। सतनरैना अभी पांचे साल का है। एक हाथ से सरकती पैंट को संभाले रहता है तो दूसरे हाथ की हथेली से चुहचुहाती नाक पोंछता रहता है। डेगान ने उसको अभिये से गुरुजी के स्कूल में डाल दिया है कि पुरखों के पुन्न–परताप से सच में ही अफसर बन जाये ससुर !

'का बे रामेसरा, एगो बढ़िया चा नहीं पिलायेगा का ? ई जाड़ा तो जान ही ले लेगा बाप !'

वही हुआ जिसकी उम्मीद थी। बढ़िया पेशल चा चाहिए..फोकट में !

'हाँ हाँ साहेब, अभी लीजिए।' रमेसर बंद कर दिए स्टोव को फिर सुलगाने की कवायद करने लगा। डेगान की हसरत भरी नजरें पांडेयजी की देहयष्टि का मुआयना करने लगीं। चर्बी की कई–कई अतिरिक्त थेगलियाँ लगी विशाल देह! देह पर खाकी वर्दी का कवच ! कवच पर मिलिटरी वाला भारी भरकम ओवरकोट ! मफलर ! तिस पर भी ठंड लग रही है हुजूर को ! डेगान चुपके से खिसक जाने वाला ही था कि पांडेयजी गुर्रा उठे –'तू कहाँ चला रे ? ठहर, चा पी लेने के बाद झंडा चौक पर छोड़ देना।'

मरता क्या न करता ! हवा में कनकनाहट उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी। डेगान के देह के रोंगटे खड़े हो गए थे। पतला स्वेटर । हवाई चप्पल का तीन चौथाई हिस्सा नदारद ! हथेलियां ठंड से अकड़ी हुईं ! थोड़ी देर में ही पांडेयजी चाय खत्म करके रिक्शे पर आ बैठे। डेगान एक हाथ हैंडल पर और दूसरा सीट पर जमा कर रिक्शा खींचने की कोशिश करने लगा। रिक्शा टस से मस नहीं हुआ, मानो उसके कलपुर्जों को पाला मार गया हो।

'का हुआ रे ? बदन में जोर नहीं है क्या ?'

बदन में जोर आएगा कहाँ से ? दिन भर में सौ ग्राम सत्तू का घोल ही न गया है पेट में। ऊपर से ढाई मन का लोथ! दांत पर दांत जमा कर देह की पूरी ताकत को बांहों में पुंजीभूत करने में लग गया वह। चेहरे और गले की नसें केंचुओं–सी फूल उठीं। थोड़ी देर की जद्दोजहद के बाद आख़िर रिक्शा चल पड़ा।

मेन रोड की हालत खराब थी। मेह की बौछार से सड़क की देह पर गिट्टियों के गूमड़ फूट आए थे। जगह–जगह गड्ढे बन गए थे। उखड़ी गिट्टियों की वजह से रिक्शा उछल पड़ता। एक जगह रिक्शा ज़रा ज़ोर से उछला तो पांडेयजी की 'हवा' निकल गयी। बदन सीट से एक फीट ऊपर उछल कर धप्प से आ गिरा। चिंतातुर हाथ सर्र से ओवरकोट के भीतर रेंग कर वहां चूजे की तरह दुबके चार सौ–टाकिया को सहला गए।

बाहर बूंदा बांदी तेज हो चली थी। थोड़ी थोड़ी दूर पर सतर्क पहरेदारों की तरह खड़े लैंप पोस्टों की मरियाली रोशनी में बूंदों की उठा पटक यूं लग रही थी मानो ढेर सारी डॉल्फिने एक दूसरे पर गिरती पड़तीं लुका छिपी खेल रहीं हों। पांडेयजी मुग्ध दृष्टि से डॉल्फिनों के इस खेल को देखते रहे। फिर एक झपाका हुआ और नजरों के सामने से मछलियां ओझल हो गईं और वहाँ शाम को रीगल पार्क में घटे एपिसोड का एक एक वाकया मेंढक की तरह फुदकने लगा।

शाम के पांच ही बजे थे, पर सुबह से हो रही लगातार रिमझिम के कारण वातावरण में धुंध घुल गयी थी। ठंड से बचने के लिए लोग घरों में दुबक गए थे। ऐसे में हवलदारी ड्यूटी को मन ही मन लानत भेजते हुए पांडेयजी रीगल पार्क की ग्रिलदार सरहद के सहारे–सहारे अपनी धुन में चले जा रहे थे कि अचानक पार्क के भीतर से धीमी फुसफुसाहट कानों में पड़ी। पांडेयजी ठमक गए। ऐं.. इतने खराब मौसम में भीतर कौन हो सकता है भला ! ज़ेहन में शक का कीड़ा कुलबुलाया तो आधे पार्क का खासा घुमावदार चक्कर काटते भीतर चले आये।

बाएं कोने में झाऊ गाछ का घना झुरमुट ! झुरमुट की चिलमन से लगी छतरी वाली बेंच ! बेंच पर आलिंगनबद्ध दो प्रेमी युगल ! पांडेयजी के कलेजे पर सांप लोट गया। इस्स.. पंड़ियाइंन दो दिनों से एक दम 'हड़ताल' पर बैठी हैं। ए डी वाला लौंग चाहिए, तभिये हाथ धरने देगी। इतनी ठंड में दो दिन 'सूखा' में कैसे गुजरे, वही जानते हैं। छूते ही अड़ियल घोड़ी की तरह दुलत्ती मारती है ससुरी। और यहाँ..! एक दम से सतरंगी आशिकी..हंह !

'ऐ.. क्या हो रहा है ई सब ?' चिड़चिड़ाकर हवा में रूल फटकारा उन्होंने। उन दोनों जीवों को संभवतः इस वक्त किसी परिंदे की भी उम्मीद नहीं थी। जिन्न की तरह खाकी वर्दी को प्रकट हुए देख कर सिट्टी पिट्टी गुम हो गयी।

'लड़की पटा के पब्लिक प्लेस में मौज मस्ती ? थाना चलिए..।' पांडेयजी ने शक्ति कपूर के अंदाज में हुंकारा भरा।

'नहीं सर, ये मेरी वाइफ है..।' युवक थूक निगलते हुए हकला उठा।

'अभी डेढ़ महीने पहले ही शादी हुई है सर, विश्वास करें।' युवती ने सहमी आवाज में अंतरा जोड़ा। पांडेयजी ने भरपूर नजरों से युवती को घूरा। मांग के बीच चिलकती सिंदूर की पतली रेखा ! गब्बर सिंह की तरह हो हो करके हंस पड़े पांडेयजी –'खूब ! यानी पूरी तैयारी किये हुए हैं। लेकिन हमको बुड़बक नहीं बना सकते, थाना चलना होगा।'

'प्लीज सर..' थाना के नाम से दोनों की घिघ्घी बंध गयी –'सच कह रहे हैं, हम पति पत्नी हैं। हम इज्ज़तदार घर से हैं सर।'

'इज्ज़तदार घर के हसबैंड– वाइफ इतना खराब मौसम में पार्क में आकर बैठता है ?'

दोनों के चेहरे लज्जा से झुक गए। युवती की आंखें डबडबा आईं। कनखी से युवक की ओर देखती कुहनी मारी –'आप अंकल को सारी बात बता क्यों नहीं देते ?' युवक एक क्षण को मौन साधे रहा। चेहरा कैसा तो दयनीय हो उठा। फिर टुकड़े टुकड़े शब्दों में जिस सच को बयां किया उसका लब्बोलुआब यह था कि दोनों की नई नई शादी हुई थी। युवक को एक रुम का क्वार्टर मिला हुआ था। किसी तरह काम चला रहे थे कि गांव से पिता आ पहुंचे मोतिया का ऑपेरशन कराने के लिए। मिलन की आतुरता में दोनों एकांत के लिए पार्क चले आये थे। युवती शर्म से पानी पानी हुई जा रही थी और युवक का गला भी रुंध गया था।

पांडेयजी ने फिर से युवती को घूरा। युवती के चेहरे पर पंडियाईन का चेहरा चस्पा होता चला गया। एक दूसरे को अतिक्रमित करते दो नारी चेहरे ! मिलन बनाम दुत्कार ! इनके बीच सलीब सा झूलता ए डी का लौंग ! पैतरा बदलते हुए पांडेयजी हिनहिनाए –'ठीक है, तब हस्बैंड वाईफ होने का प्रमाण देना होगा। ई सिंदूर फिन्दूर से काम नहीं चलेगा।'

'प्रमाण.?' प्रमाण के नाम पर दोनों की जान में जान आयी –'प्रमाण तो घर पर है सर।'

'नहीं, प्रमाण यहीं है, आआपकी जेब में। तनी जेब दिखाइए।' होंठों पर कुटिल मुस्कान चिलकने लगी थी। आश्चर्य से भर कर युवक ने जेबों का सारा सामान युवती के दुपट्टे में उलट दिया–पिता की दवा का प्रिस्क्रिप्शन, ऑपेरशन करने वाली चौरिटेबल संस्था के कागजात, आधा पैकेट चार्म्स, दो डिलक्स निरोध, लाइटर और पर्स। पांडेयजी ने पूरे अधिकार से पर्स खोला। अंदर सौ वाले पांच नोट दुबके हुए थे। चार नोट निकाल कर अपनी जेब के हवाले करते फनफनाए –'शुक्र है प्रमाण मिल गया, नहीं तो अभिये थाना लेजाकर बंद कर देते।'

'अंकल..' युवती गिड़गिड़ाई–'ये रुपये बाबू के ऑपेरशन के लिए कर्ज लिए हैं। काल पैसा जमा नहीं हुए तो ऑपेरशन नहीं हो सकेगा।' पांडेयजी के कदम उसकी गिड़गिड़ाहट पर ठमके नहीं। इस वक्त उनकी चेतना पर सिर्फ दो बातें बेताल की तरह सवार थीं – एडी का लौंग और मानिनी पत्नी का कोपभवन वास !

चक्के के नीचे गिट्टी आ जाने से रिक्शा उछला। तंद्रा भंग हो गयी। शाम के एपिसोड का सम्मोहन दरक गया। अब टिप टिप बरसते पानी के नीम धुआँसे में सामने रिक्शा चलाती एक कृशकाय मानव आकृति भर नजर आ रही थी।

'अरे, जरा तेज चला न रे..' मिलन की आतुरता में उन्होंने झिड़की का कोड़ा फटकार ही दिया। डेगान मन ही मन तिलमिला उठा। गतिमान रिक्शे की वजह से पौष की बरसाती हवा बर्छी की तरह चुभ रही थी। बुरी तरह घिस चुकी चप्पलों के कारण तीन चौथाई नंगे पांव तो जैसे सुन्न ही हुए जा रहे थे।

इंद्रपुरी चौक पर रिक्शा ज्योंही बाएं मुड़ा कि डेगान ने अचानक किनारे लाकर रिक्शा रोक दिया। पांडेयजी सकपका गए। सुनसान अंधेरी जगह पर रिक्शा काहें रोक दिया ? छोटी जात वालों का कोई भरोसा भी तो नहीं है। जहां रिक्शा रुका था, वहीं गड्ढे के पास प्लास्टिक का नया कैरी बैग पड़ा था। डेगान रिक्शा से उतरा और जाकर तेजी से कैरी बैग उठा लाया। बैग के भीतर गत्ते का डिब्बा था। उत्तेजना से सनसनाती उंगलियों ने डिब्बे को बाहर निकाल कर खोल डाला। आंखें फटी की फटी रह गईं – 'एक्शन' की एक जोड़ी नई चप्पल ! एक पल के लिए डेगान स्तब्ध रह गया। फिर खुशी से भाव भिभोर होकर झूम उठा।

'साहेब, ई नई चप्पल.. वहां गड्ढे के पास मिली।' आवाज में अप्रत्याशित कुछ पा जाने की सिहरन भरी हुई थी। एतना शानदार चप्पल ! हे भगवान, तुम केतना दयालु हो ! इस वक्त एक जोड़ी चप्पल का बहुत जरूरत भी था। नंगे गोड़ से ससुर पैडल पर जोर ही नहीं लग रहा था। उसका मन हुआ, पंख फैला कर मोर की तरह नाचने लगे। बड़ी नज़ाकत से चप्पलों पर हाथ फिराया। खरगोश सा मख़मली स्पर्श पूरी देह में सरसरा गया।

'ऐ, दिखा तो चप्पलवा..,'

'हां हां साहेब, देखिये न। तब तक हम रिक्शा आगे बढ़ाते हैं।' डेगान कैरी बैग मय चप्पल के पांडेयजी को थमा दिया। खुद हुलस कर रिक्शा पर बैठा और पैडल मारने लगा। पांडेयजी की नज़र जैसे ही चप्पलों पर गयीं कि आंखें फैल कर पकौड़े जैसी हो गयीं –'एक्सन' की ब्रांडेड चप्पल !

रिक्शा चलाते डेगान के मन में अचानक एक शंका फुफकार उठी। पांडेयजी की ओर मुंह करके किंकियाया– 'साहेब, चप्पल उठा कर कौनो जुरूम तो नहीं न कर दिए हम?'

'नहीं रे, कोई जुर्म नहीं है..' पांडेयजी मन ही मन डेगान

के भाग्य को कोस रहे थे – चमरवा अब एक्शन का चप्पल पहनेगा, हंह !

'चप्पल ठो वहां गड्ढे के पास फेंका पड़ा था। नज़र पड़ गया तो हम उठा लिए। किसी का चोरी थोड़े ही न किए हैं !' पांडेयजी ने कुछ सुना, कुछ नहीं सुना। उनके जेहन में अजीब खलबली मची हुई थी। इतनी दामी और बढ़िया चप्पल ई बुड़बक के गोड़ (पाँव) में शोभा देगी ? अरे, इसके लिए तो किसी बड़े 'अफसर' के शानदार गोड़ चाहिए ! गोड़ नहीं पाँव. .! पाँव भी नहीं, 'चरण' ! उनका चेहरा उदास और गंभीर हो गया। डेगान मुंह घुमा कर फिर से कुछ पूछना चाहता था कि सहम गया। साहेब उदास हैं और साफ–साफ कुछ बोल नहीं रहे। कहीं चप्पल उठा कर कोई जुरूम तो नहीं हो गया उससे। ज़रूर यही बात है। तभी साहेब मौन साध लिए हैं। हे भगवान, ई चप्पल तो जी का जंजाल ही बनने लगा ससुर ! वह सीधा साधा गंवई आदमी ! 'मुलुक' छोड़ कर शहर आया कि इज्ज़त का दाल–रोटी कमा सके। इज्ज़त पर बट्टा बर्दास्त होगा ? एक अपराधबोध ज़ेहन में शिद्दत से कुलबुलाने लगा।

लगभग पांच मिनट का मौन विराम ! दोनों ओर से ! डेगान रिक्शा चलाता रहा। रिक्शा गंतव्य पर आ पहुंचा। पांडेयजी किसी लंगूर की तरह फुदक कर नीचे उतर गए। चप्पल वाला कैरी बैग अभी भी उनकी अंगुलियों में झूल रहा था। डेगान गमछे से चेहरा पोंछता पास आकर मासूमियत से बोला– 'साहेब, सिरिफ एक बार हमरी तसल्ली के लिए कह दें कि लावारिश पड़ा चप्पल उठा कर कौनो जुर्म नहीं किये हम। आप तो सरकार हैं साहेब। कानून सब जानबे करते हैं।'

'नहीं रे डेगान भाई..', पांडेयजी के भीतर इसी बीच एक खिचड़ी पक चुकी थी। मुस्कुराते हुए उसकी पीठ पर धौल जमाते बोले– 'कोई जुर्म नहीं हुआ, निसफिकिर रहो। लावारिस चीज को कोई तो उठाता ही।'

'ओह साहेब..' पांडेयजी के मुंह पर हमेशा की तरह 'अबे.. तबे..' की जगह 'भाई' का नया संबोधन सुनकर डेगान चकित था, फिर हुलस कर बोल पड़ा– 'ई बात कह कर हमरा माथा पर का बड़ा बोझ हल्का कर दिये आप।' पुरानी चप्पलों को हाथ मं उठा कर हवा में नचाते हुए बड़बड़ाया– 'देखिये.. देखिये हुज़ूर, क्या हाल है चप्पल का ? पूरा गोड़ खाली रह जाता है। पैडल पर ज़ोर ही नहीं लगता। अब रिक्शा चलाने में आराम हो जाएगा।'

डेगान की आंखें किंचित डबडबा आईं। कंठ रुंध गया। तभी पांडेयजी की गंभीर आवाज चील की तरह फड़फड़ायी– 'लेकिन भाई, ई चप्पल पर तुमरा नहीं, हमारा हक बनता है।'

मानो दस्ती बम गिरा हो दोनों के बीच, डेगान सनाका ही कहा गया। ई क्या कह रहे हैं हवलदार साहेब ! चप्पल पर उनका हक ? ले हलुआ ! चप्पल ठो नज़र हमको आया और उठाये भी हम ही। फिर उनका हक कैसे ?

'देखो..' पांडेयजी झाऊ मूछों के बीच मुस्कुराए– 'हम समझाते हैं। झंडा चौक की तरफ तुमको कौन लेकर आया ?'

'आप हुज़ूर..!' डेगान ने कार्टून की तरह पलकें झपकायीं।

''ठीक..!' पांडेयजी की आंखों में शातिर चमक बिल्ली की तरह आ चुबकी थी– 'यदि हम झंडा चौक की तरफ लेकर नहीं आते तो..तो न तुम इस तरफ आते और न ही चप्पल तुमको मिल पाता। है कि नहीं ?'

डेगान उनकी बातों के सम्मोहन में उलझने लगा। तनिक ठहर कर पांडेयजी गंभीर वाणी में बोले– 'हम ठहरे ब्राह्मण आदमी। हमसे झूठ और अन्याय का बात नहीं होता। सीधा सादा मामला है कि इस रास्ते में तुमको हम लेकर आये, सो इस पर हमरा हक हुआ। कानून भी यही कहता है।'

डेगान का मुंह लटक गया। निमिष के लिए मन में तर्क कौंधा कि .. ई रास्ते में बेशक आप ही लाये, पर गड्ढे की तरफ जो हमरी नजर नहीं जाती तो चप्पल आपको मिल जाती ? दूसरे ही पल तर्क बुलबुले की तरह फूट कर हवा में फना हो गया। सच में हवलदार साहेब ठीक ही कह रहे हैं। वह तो घर ही लौट रहा था न, उनके कहने पर ही इधर आना पड़ा। चप्पल पर उनका ही हक बनता है।

पांडेयजी को विश्वास नहीं था कि डेगान इतनी जल्दी मान जाएगा। मन में लड्डू फूटने लगे। ठुमकते हुए जाने को मुड़ ही रहे थे कि डेगान आहिस्ते से मिमियाया– 'साहेब, चप्पल न सही भाड़ा तो दे देते ..'

पांडेयजी की भृकुटि तन गयी। खुद को संयत रखते हुए हो–हो करके हंस पड़े। हंसी में अनायास ही खाकी वर्दी की खनक घुल गयी थी– 'अबे, सब तरफ तो अधर्म है ही। अब धर्म–कर्म और सनातनी परंपरा को बचाने का जिम्मा तुमरे जैसे सज्जन लोगों के कंधों पर न आ पड़ा है, आयँ ! बाभन लोगों से भी कोई भाड़ा मांगता है ?'

डेगान का सिर अपराध बोध से झुक गया। पांडेयजी गर्दन मुर्गे की तरह ऊंची तान कर आगे बढ़ गए।

•

पता : सी/0 प्रिंस रेडीमेड केडिया मार्केट, मोहन फैमिली स्टोर, आसनसोल–713301 (पश्चिम बंगाल)
मो. : 9832194614

सांझ

❑ डॉ. रंजना जायसवाल

दिसम्बर की गुलाबी ठंड उफ सहा भी न जाये और रहा भी न जायें। ठंड से कान और नाक सुन्न पड़ गये थे। मिश्रा जी ने ठंड से ऐंठती अपनी उंगलियों को रगड़कर गर्म करने का प्रयास किया। उम्र के साथ शरीर का खून भी ठंडा होता जा रहा था, मिश्रा जी ने अपने झुर्रीदार हाथों को देखा तो चेहरे पर व्यंग्यात्मक मुस्कान बिखर गई।

मिश्रा जी की पत्नी निर्मला, शादी के पैंतालिस साल बाद आज भी वैसी ही कर्मठ। उनका जन्म जैसे इस घर के लिए ही हुआ था। सुबह से शाम तक एक पैर पर खड़ी घर के कामों को निपटाती रहतीं पर क्या मज़ाल चेहरे पर एक शिकन भी आ जाए। कुछ लोगों की किस्मत भी ऐसी होती है। मायके में छोटे–भाई बहनों की जिम्मेदारी निभाते–निभाते शादी हो गई और ससुराल में सबसे छोटी बहू होने के दंश को झेलते–झेलते उम्र निकल गई।

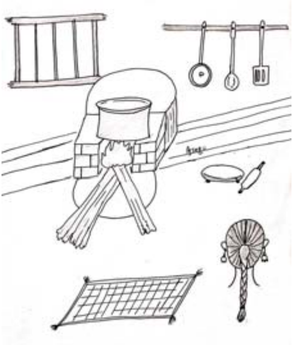

कहते हैं घर का सबसे छोटा बेटा या बेटी घर भर का दुलारा होता है, पर पता नहीं क्यों वही दुलारा बेटा या बेटी शादी के बाद बिगड़ैल मान लिया जाता है। ''छोटे हो छोटे की तरह रहो या फिर घर में सबसे छोटे थे इसीलिए मन बढ़ा हुआ है,यह बात सुनते–सुनते दोनों पति–पत्नी के बाल सफेद हो गये।शायद यही कारण था जब भी कोई अपने छोटे होने के दर्द को कहता तो मिश्रा जी के मुँह से अनायास निकल जाता, ''छोटे हैं तो कोई अपराध तो नहीं कर दिया। उन्होंने बड़े होकर कौन सा तीर मार लिया। अरे! शास्त्रों में भी लिखा है कि क्षमा बड़े को चाहिए छोटन को उत्पात...पर आज के ज़माने में तो बड़े ही उत्पात कर रहे हैं और छोटे उन्हें माफ कर रहे हैं।

पर जिन्दगी इंसान को किस मोड़ पर कौन–सा सबक सिखा जाये, ये कोई नहीं जानता।आज निर्मला ने नाश्ते में दलिया और मूली का पराठा बनाया था।कल ही की तो बात है, घर के सामने से सब्ज़ी वाला गुजर रहा था। ठेले पर सजी

रंग–बिरंगी सब्जियाँ देखकर मन ललचा गया।वो गोल–गोल फुले–फुले बैंगन, वो ताज़ी–ताज़ी धनिया, वो मोटी–मोटी मस्त हाथ भर की सफेद मूलियाँ...

गर्म–गर्म पराठे और दलिया खाकर मन तृप्त हो गया। नाश्ता आज कुछ ज्यादा ही हो गया था।मिश्रा जी टहलते–टहलते धूप की तलाश में घर से बाहर आ गए। सूर्य देवता आज उनके साथ ठिठोली करने में लगे थे। इमारतों के बीचे आँख–मिचौली करते–करते सूर्य देवता मेहरोत्रा जी के गेट पर चमकने लगे। जाड़े की धूप इंसान को इतना लालची बना देती है कि बस क्या कहें।मिश्रा जी उस मोह को छोड़ नहीं पाए और मेहरोत्रा जी के गेट तक अपनी प्लास्टिक की कुर्सी लेकर पहुँच गए।उम्र के साथ कुर्सियाँ भी बूढ़ी हो गई थी। बैठो तो अजीब तरह से चर–मर आवाज़ करने लगती थी। मिश्रा जी की हड्डियाँ ठंड में जैसे अकड़ सी गई थी।मिश्रा जी और सूर्य देवता में साक्षात्कार अभी शुरू ही हुआ था कि तभी सिंह साहब हाथ में दूध की थैलियाँ और ब्रेड लेकर आते दिखे।

''गुड मॉर्निंग मिश्रा जी !''

सिंह साहब ने मुस्कुराते हुए कहा

''वेरी गुड मॉर्निंग!''

मिश्रा जी ने गर्म जोशी से हाथ मिलाते हुए कहा,

''भई सवारी कहाँ से आ रही है?''

''कुछ नहीं भाई साहब दूध लेने गया था। टहलना का टहलना और काम का काम भी हो जाता है।''

सिंह साहब ने मुस्कुराते हुए कहा, सिंह साहब जिनका पूरा नाम इन्द्रजीत प्रसाद सिंह था। मतलब आई.पी.एस. कॉलोनी की सीनियर सिटिजन मंडली उन्हें इसी नाम से पुकारती थी। सिंह साहब लोक निर्माण विभाग में प्रथम श्रेणी के अधिकारी थे। उन्हें रिटायर हुए लगभग 6–7 साल हो रहे थे। मिश्रा जी की उनसे काफी पटती थी। मिश्रा जी भी एक उच्च पदस्थ अधिकारी थे। उनका रिटायरमेण्ट भी लगभग सिंह साहब के साथ ही हुआ था। रिटायरमेण्ट से पहले दोनों मित्र रिटायरमेण्ट के बाद क्या–क्या करेंगे...कि प्लानिंग करते रहते। मिश्रा जी का भरा–पूरा परिवार था...तीन बेटे और एक बेटी। रिटायरमेण्ट से पहले ही चारों बच्चों की शादी कर वह गंगा नहा चुके थे। बच्चों के लिए कानपुर में घर बनवा दिया था कि बच्चों की पढ़ाई में कोई बाधा उत्पन्न न हो। वे हमेशा कहते, ''हमारा क्या हम तो खाना–बदोश आदमी, कभी यहाँ तो कभी वहाँ। सरकार जहाँ भेजेंगी हाथ जोड़े पति–पत्नी पीछे–पीछे चल देंगे'' पर हमारी वजह से बच्चों का जीवन उनकी पढ़ाई क्यों सफर करें।

मिश्रा जी के चारों बच्चे बहुत समझदार थे, उनके घर कभी अचानक भी चले जाओ तो यह नहीं लगता था कि उनके घर में कोई बड़ा नहीं रहता। उनका परिवार उनके बच्चे आदर्श बच्चों की श्रेणी में आते थे। उनके बच्चों को छःबजे के बाद घर से बाहर नहीं देखा जा सकता था। जवान होती बहन के लिए जो रोक–टोक थीं,वही बन्दिशें घर के और लड़कों के लिए भी थी। शायद जो व्यक्ति लड़का–लड़की या फिर छोटा या बड़ा होने का भुक्तभोगी होता है, वह हमेशा दूसरों के प्रति उन्मुक्त और स्वतंत्र विचार धारा का हो जाता है। सारे भाई–बहन एक साथ मिलकर काम करते। बहन के इम्तहान के समय चाय का प्याला मेज पर मिलता तो वही छोटे भाई को नौकरी पर जाने के लिए बहन चार बजे उठ कर नाश्ता और खाना पैक करके देती।

निर्मला जी अपने पति की नौकरी की मजबूरी के कारण उन्हें अकेला नहीं छोड़ पाती। मगर दोनों पति–पत्नी शनिवार और रविवार का दिन बच्चों के साथ ही बिताते। निर्मला जी के प्रेम और धैर्य का सोता इन दो दिनों में कुछ ऐसा फूटता कि मिश्रा जी आश्चर्य से देखते रह जाते। आकाशवाणी के फरमाइशों गीतों की तरह बच्चों के खानों की फरमाइश पूरी करते–करते दो दिन कैसे बीत जाते, पता ही नहीं चलता। एक ही बिस्तर पर बच्चें माँ के पास ऐसे चिपक कर लेटते कि मिश्रा जी को यह दृश्य देख कर हँसी आ जाती। निर्मला जी कभी कभी बनावटी गुस्से में झिड़क भी देती ''घोड़े–घोड़े भर कर हो गये, मगर बचपना नहीं जा रहा।'' बच्चे दुलार में और भी चिपक जाते।

मिश्रा जी की बेटी अपने पिता से बहुत ज्यादा हिली–मिली थीं। पिता के मुँह से निकली बात उसके लिए पत्थर की लकीर थी। शायद बेटियाँ इसीलिए पिताओं को सबसे ज्यादा प्यारी होती है और उनके विदा होने पर माँ से ज्यादा पिता को कष्ट होता है।माएँ तो फिर भी रो–धोकर अपना दुःख कम कर लेती है पर पिता, अपने दिल का दर्द किससे बाँटे।

दीवाली का त्यौहार था, घर–में बहुत चहल–पहल थी। त्यौहार की रौनक में कब पाँच दिन बीत गये, किसी को पता भी न चला। मिश्रा जी की कल ट्रेन थी, मिश्रा जी पलंग पर लेटे थे और सोने का उपक्रम कर रहे थे। तभी उनकी बेटी आई और उनके पैर पर सिर रख लेट गई।

''क्या हुआ वसुधा...ऐसे क्यों लेट गई, जाओ अपने कमरे में जाकर आराम करो। काफी लेट हो गयी है, सुबह जल्दी उठना है।''

पर वसुधा ने जैसे कुछ सुना ही नहीं,

''पापा आपने तो मुझे विदा करने से पहले ही विदा कर दिया।''

और न जाने क्या सोच कर वसुधा की आँखें भर आई। वसुधा के मुँह से यह बात सुनकर मिश्रा जी अचकचा से गये।

''क्या हो गया वसुधा, इतनी डिस्टर्ब क्यों लग रही हो। मैं और तुम्हारी मम्मी हर सप्ताह आ ही जाते हैं फिर तुम इतना क्यों परेशान हो।''

''कुछ नहीं!''

वसुधा यह कहकर बिस्तर से उतर गई। मिश्रा जी रात– भर सो नहीं पाये, वसुधा की बातें उनके कानों में गूँजती रही। ठीक ही तो कहा था वसुधा ने नौकरी के मकड़–जाल में उन्हें आठ साल तक अपने बच्चों से दूर रहना पड़ा। इसी बीच उनके चारों बच्चों की शादी हो गई और मिश्रा जी और निर्मला जी नाती–पोते वाले हो गये। इन आठ सालों में मिश्रा जी और निर्मला जी ने अपने बच्चों से दूर रहने का जो दर्द झेला था, रिटायरमेण्ट के बाद वह अपने बच्चों के साथ रहने के उत्साह के सपने में वह दर्द भी भूल गये।

पर कहते हैं न, सपने हमेशा सच नहीं होते। जिन बच्चों को उन्होंने अपना भविष्य बनाने के लिए अपने आप से दूर किया था, आज वे बच्चे एक जिम्मेदार पिता और जिम्मेदार पति भी थे। शायद एक जिम्मेदार व्यक्ति पिता और पति होने से पहले एक जिम्मेदार बेटा भी होता है, वो यह बात भूल चुके थे। मिश्रा जी को रिटायर हुए अभी तीन–चार महीने ही हुए थे, पेंशन की मोटी रकम हर महीने उनके खाते में जमा हो रही थी। घर में हमेशा एक त्यौहार–सा माहौल बना रहता। पूरा परिवार हर शनिवार, रविवार कभी रेस्ट्रा तो कभी पिक्चर देखने निकल जाता। मिश्रा जी आठ सालों से जिन खुशियों के लिए तरस रहे थे, आज वो खुशियाँ कभी उनकी आँखों से तो कभी उनके चेहरे से छलक जातीं।

......पर कहते हैं न चार दिन की चाँदनी फिर अंधेरी रात है, मिश्रा जी के यहाँ भी उल्लास का त्यौहार खत्म हो गया। खुशियों ने अपना डेरा–डंडा किसी और के यहाँ जमा लिया। धीरे–धीरे जिन्दगी पटरी पर आने लगी। बहुएँ तो फिर भी दूसरे घर से आई थीं दूसरे का खून थीं, पर लड़के, अपने लड़के जिन्हें अपने खून–पसीने से सींचा था, उन्हें अपनी स्वतन्त्रता का बाधक समझाने लगे। मिश्रा जी का छोटा लड़का जो अपने बचपन में हर बात अपनी माँ से पूछता ता था–आज वो ही बेटा माँ के पूछने पर– ''बेटा कहाँ जा रहे हो, कब आओगे'' चिढ़ जाता है कि पूछो मत।

''क्या माँ जब देखा कहाँ जा रहे हो, कब आओगे। नहीं जाना मुझे कहीं भी। घर में ही रहूँगा, तुम्हारे सामने।' निर्मला निर्विकार भाव से बस बेटे को देखती ही रह जाती, शब्द तो जैसे उसके तालू से चिपक जाते और बहू पति को शांत करने के बजाय तमाश–बीनों की तरह माँ– बेटे को उलझता देखती रहती। धीरे–धीरे छोटे ने माँ की रोक–टोक से बचने के लिए दूसरा रास्ता निकाल लिया। बहू मुँह से तो कुछ नहीं कहती थी, पर अंदर ही अंदर वह अपना काम कर देती। बेटा पहले ही कार में जाकर बैठ जाता और बहू पापा जी दरवाजा बंद कर लीजिए हम लोग 3–4 घंटे में आ जायेंगे। खाना बाहर ही खा लेंगे– कह कर निकल लेती। मिश्रा जी ठगे से बहू का मुँह देखते रहे जाते। अब तो ये रोज का हाल था। बेटे ऑफिस से कब आते और कब चले जाते, मिश्रा दम्पत्ति को खबर भी नहीं लगती। बहुएँ कभी बाजार, कभी स्कूल तो कभी पार्लर के नाम से बाहर आती–जाती रहतीं और वे कभी इस बहू के लिए तो कभी उस बहू लिए दरवाज़ा ही खोलते–बंद करते रह जाते।

शुरू–शुरू में तो बहुएँ बड़े मनुहार के साथ मिश्रा जी और निर्मला जी को खाना परोसती और खिलाती पर वक्त के साथ नाटक का वह अध्याय भी समाप्त हो गया। बहुओं को रोज किसी न किसी बहाने से घर से बाहर जाना होता और देवरानी–जेठानी की देखा–देखी में पिसे जाते हैं मिश्रा जी और मिश्राइनी। निर्मला जी पति को इस तरह परेशान देखकर कहतीं, ''बाहर गई है कही फँस गई होगी। मैं हूँ न चिन्ता मत करिए आप को समय से खाना मिल जायेगा।'' पर मिश्रा जी को चैन नहीं मिलता– ''रूक जाओ, दस मिनट और इंतज़ार कर लो आती होगी। ''क्या कहतीं निर्मला जी आपके पीठ पीछे आपकी बहुएँ हमारे विषय में क्या बातें करती है। महीनों से जो बातें उनके दिलों–दिमाग में घूम रही थीं, वो अपने पति अपने बच्चों के पिता और अपने बहुओं के ससुर से क्या कहें। वो उनके मन के भ्रम को नहीं तोड़ना चाहती थीं।

धीरे–धीरे बिना कुछ कहे मिश्रा जी को भी जीवन की सचाई समझ में आने लगी और उन्होंने अपनी परिस्थितियों से समझौता करना सीख लिया, पर उम्र के इस पड़ाव में निर्मला

को इस तरह गृहस्थी में जूझते देख मिश्रा जी का दिल दर्द से कराह उठता पर वो कुछ भी नहीं कर सकते थे.......... । घर की विषम परिस्थितियों से जूझते मिश्रा दम्पति टहलने के बहाने घंटों एक–दूसरे के साथ सड़क नापते रहते, मानों इस घर इस दुनिया की सवालिया निगाहों से दूर भाग जाना चाहते हों।

लोग कहते हैं कि बच्चे और बूढें एक समान होते हैं। हम बड़े तो शायद किसी भी तरह हाथ बढ़ाने से पहले उसके उम्र उसका सामाजिक रूतबे को नापते–तौलते हैं फिर कहीं जाकर निश्चिन्त होते हैं तब जाकर दोस्ती करते हैं पर बच्चे और बुजुर्ग इन सीमाओं से परे होते हैं। उनका रिश्ता स्वार्थ पर नहीं दिलों के तराजू पर तोला जाता है।

सिंह साहब भी मिश्रा जी के जीवन में उसी रिश्ते की कड़ी थे। रिटायमेण्ट के एक साल बाद पत्नी की हृदय गति रूक जाने से मृत्यु हो गई थी। शायद उन्होंने भी रिटायरमेण्ट के बाद अपनी पत्नी के साथ खुशहाल जीवन बिताने के सपने देख थे, क्योंकि अक्सर मैंने दाल रोटी के जुगाड़ में अपनी इच्छाओं का परित्याग करती पत्नी के लिये उनकी आँखों में छलक आये आँसुओं को महसूस किया था। सिंह साहब हमारे साहब हमें सभी उन्हें इसी नाम से बुलाते या यूँ कहिए छेड़ते थे। आप तो जन्मजात प्रथम श्रेणी के अधिकारी हैं और गम्भीर स्वभाव के सिंह हमारी बात पर हल्के मुस्कुरा कर रहे जाते। सिंह साहब का एक ही बेटा था पढ़ने में शुरू से ही बड़ा होशियार था। सिंह साहब ने अपने जीवन की गाढ़ी कमाई उसका कैरियर बनाने में लगा दिया और एक दिन बेटा भी अपने पिता की तरह प्रथम श्रेणी का अधिकारी बन गया।

बेटे की सफलता ने घर के बाहर लड़की वालों की लाइन लगा दी। सिंह साहब खुद भी सक्षम थे और बेटे की नौकरी उन्हें उज्ज्वल भविष्य के संकेत भी दे रही थीं। अनन्तः उन्होंने एक सम्भ्रांत परिवार की शिक्षित और सुशील कन्या से अपने इकलौते लड़के की शादी कर दी। शादी के कुछ साल बाद तब सब कुछ ठीक–ठाक चलता रहा। बहू ने साल भर के अन्दर सिंह साहब और भाभी जी को पोते का सुख दे दिया। एक बच्चे ने सारे घर को व्यस्त कर दिया। सिंह साहब और भाभी जी का सारा समय पोते का लाड़ उठाने में ही निकल जाता। उम्र का यह पड़ाव कुछ मामलों में ही बड़ा ही खूबसूरत होता है। जिन्दगी हमें एक बार फिर अपना बचपन जीने का मौका देती है। शायद ऐसे ही घर को ''छोटा परिवार और सुखी परिवार की संज्ञा दी जाती है। सिंह साहब की बहू भी उनकी इस खुशी में शामिल हो जाती। इसी बीच अचानक भाभी जी की हृदय गति रूक जाने से मृत्यु हो गयी। उम्र के इस पड़ाव में अपने जीवन साथी से अलग हो जाने का दर्द क्या और कैसा होता है। यह तो एक भुक्त भोगी ही समझा सकता हैं। दो हंसो का जोड़ा एक–दूसरे से बिछुड़ चुका था।

जिन्दगी के महासमर में जीवन भर साथ निभाने का वायदा करने वालों के साथ निभाने का वायदा करने वाला साथी बीच राह में हाथ छुड़ा कर न जाने किस महा शून्य में लुप्त हो गया। धीरे–धीरे जिन्दगी पटरी पर आने लगी। बेटा अपनी फाइलों में और बहू अपने घर के कामों और किटी पार्टियों में व्यस्त हो गई। सिंह साहब का पोता भी अब स्कूल जाने लगा था। घर में पहले से ही झाडू– पोछा वाली कपड़ा धोने वाली लगी थी, भाभी जी की मृत्यु के बाद घर में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ घर में खाना–बनाने के लिए आया भी रख ली गई। सिंह साहब प्रथम श्रेणी के अधिकारी रह चुके थे। घर में नौकरों–चाकरों की कोई कमी नहीं थी। हर काम के लिए नौकर थे, पानी पीने के लिए भी सोचो तो एक नौकर गिलास का पानी लिए खड़ा रहता। मगर भाभी जी ने कभी रसोई घर नौकरों के हाथ में नहीं दिया। भाभी जी तो मानों अन्नपूर्णा का अवतार थीं, उनके बनाये खाने में इतना रस और स्वाद था कि सिंह साहब आज भी उनके बनाये खाने की तारीफ करते नहीं थकते। बाप बेटे की थाली में एक–एक फुलका गर्म–गर्म परोंसा जाता पर उनके जाने के बाद..... ।

सिंह साहब ने दबे स्वर में अपने बेटे से कहने का प्रयास भी किया। ''नरेन्द्र खाना बनाने वाली को लगाने की क्या जरूरत है। चार आदमी का ही तो परिकार है,खाना बनाने में वक्त ही कितना लगता है।'' ''ओफ हो पापा'' आप तो कुछ समझते ही नहीं या फिर आप समझना ही नहीं चाहते हैं। रेखा कब तक इन घर– गृहस्थी के चक्करों में फँसी रहेगी। आखिर उसकी भी तो कोई जिन्दगी है एम.ए. पास है क्या उसके माँ–बाप ने सिर्फ इसीलिए उसे पढ़ाया था कि घर–गृहस्थी के नाम पर वह अपने सारी शिक्षा अपना टैलन्ट जाया कर देते।''

''वैसे भी पापा लोग क्या कहेंगे कि एक क्लास वन ऑफिसर की बहू घर का काम करती है, अच्छा नहीं लगता पापा। वैसे भी मैं इतना किसके लिए कमा रहा हूँ कि अपनी ही पत्नी और बच्चे को जीवन का सुख और आराम न दें सकूँ।'' सिंह साहब नरेन्द्र का मुँह देखते रह गये। आज क्लास वन आफिसर श्री नरेन्द्र सिंह जी जिस बखूबी से

अपनी पत्नी की वकालत कर रहे थे, वो यह भूल गये थे कि उनकी माँ भी एक क्लास वन ऑफिसर की पत्नी थी जिसका सारा जीवन बाप–बेटे की फरमाईश पूरा करते–करते बीत गई, ...पर उसने कभी कोई शिकायत नहीं की। सिंह साहब को आज अपनी पत्नी की बहुत याद आ रही थी। ''पापा वो मैं बताना भूल गया रेखा की एक प्राईवेट स्कूल में नौकरी लग गई है। कल से उसे ज्वाइन करना है। दिन–भर घर में बैठे–बैठे बोर हो जाती है।'' सिंह साहब के पास अब कुछ भी कहने–सुनने को नहीं रह गया था। कहते भी किससे ? नरेन्द्र से.... जिसके कान तक अब तो सिंह साहब की कोई आवाज़ नहीं पहुँचती थी। सिंह साहब चुपचाप घर से बाहर निकल गये और बेवजह सड़क पर तब तक टहलते रहे जब तक कि उनके पैरों ने जवाब नहीं दे दिया। अचानक उन्हें अहसास हुआ कि काफी रात घिर आई, उन्हें घर से निकले काफी वक्त हो चुका है। वो भरे मन और भारी कदमों से घर की तरफ बढ़ गये।

नरेन्द्र घर के बाहर ही टहलता मिल गया, ''क्या पापा कहाँ थे आप। कितनी देर हो गई, समय का अंदाजा भी है। रेखा बेचारी कितनी देर से आप के लिए परेशान हो रही थी। अभी–अभी कह सुन के मैंने उसे सोने के लिए भेजा है। आप को तो बताया भी था कि कल उसकी ज्वाईनिंग का दिन है पर आप.... खैर छोड़िए। खाना मेज पर रखा है, हम सबने खाना खा लिया है, आप भी खा लीजिए। ये ताला–चाभी रखी है, गेट पर ताला लगाना मत भूलिएगा.... ओ. के. गुड नाईट।'' सिंह साहब बहुत देर तक सोचते रहे कि यह कैसी चिन्ता है जहाँ, पिता की चिन्ता के मारे उनका इकलौता बेटा अपने पूरे परिवार के साथ खाना खा लेता है और बहू ससुर की चिन्ता में सोने चली जाती है। सिंह साहब अपने आपको लगभग घसीटते हुये डायनिंग टेबल तक ले गये। इंसान चाहे कितना भी दुःखी क्यों न हो, मगर वह नीच पेट की आग उसके हर दुःख को भस्म कर देती है। कैसेरोल में रखी सब्जी और पसीजी हुई रोटियाँ देख कर न जाने उनका मन कैसा–कैसा हो गया। आज उन्हें अपनी पत्नी बहुत याद आ रही थी। गर्म–गर्म फूली–फूली रोटियाँ और भांप उड़ती हुई सब्जी को देखकर किसका मन खाने के लिए न ललचा जाये, यह सब सोच कर उन का दिल भर गया और उल्टे सीधे दो–चार कौर खा कर वह मेज से उठ गये।

सिंह साहब यही सोचते रहे कि अगर आज उनकी पत्नी होती तो क्या उन्हें ऐसे भूखे पेट मेज से उठने देती पर ....। समय बड़ी तेजी से बीतता जा रहा था। रेखा अपने स्कूल के कामों में इतना व्यस्त हो गई कि घर के लिए उसके पास बिल्कुल वक्त नहीं रह गया। नरेन्द्र की धीरे–धीरे तरक्की होती गई और वह एक जिम्मेदार पद का अधिकारी हो गया। पदोन्नति के साथ रोब–दाब भी बढ़ गया। नरेन्द्र अब अपने लाव लश्कर के साथ कार्यालय आता–जाता। आये दिन पति–पत्नी कभी किसी सामाजिक संस्था में तो कभी किसी स्कूल में सम्मानित अतिथि के रूप में आमंत्रित किये जाते। नरेन्द्र के पद के प्रभाव के कारण रेखा कई सामाजिक संस्थाओं की पदासीन अधिकारी बना दी गई। सामाजिक संस्थाओं में रेखा की छवि एक सुलझी और दयालु महिला के रूप में थी। गरीब कन्याओं की शादी, जरूरतमंदों के रोजगार हेतु प्रशिक्षित करने के लिए धन की सुविधा को उपलब्ध कराना उसका आये दिन का काम था। सिंह साहब का पोता भी बड़ा हो चुका था। उसकी देख भाल के लिए एक आया रख ली गयी थी, जिससे उसे माँ–बाप की कमी न खले। लेकिन रेखा और नरेन्द्र शायद इस बात को भूल गये थे कि चंद रूपयों से माँ की ममता और पिता का स्नेह नहीं खरीदा जा सकता। वैसे भी देखा जाये तो अंश घर में रहता भी कितनी देर था। स्कूल से छूटने के बाद तीन बजे से उसकी ट्यूशन क्लासेज थीं। वहाँ से लौटने के बाद नरेन्द्र की गाड़ी उसे स्वीमिंग क्लासेज के लिए ले जाती थी।

नरेन्द्र और रेखा ये बिल्कुल नहीं चाहते कि इस कम्पटीशन से भरी दुनिया में उनका इकलौता बेटा किसी से पीछे रह जायें। नरेन्द्र और रेखा अक्सर शाम को कभी किसी मीटिंग किसी समारोह में निकल जाते और खाना भी बाहर खा कर आते। घर में सिंह साहब और उनका पोता रह जाता। वैसे रेखा अक्सर उसे अपने साथ ले जाती, मगर बड़ों की बनावटी हँसी और चापलूसी से भरे व्यवहार में उसका मन न लगता और वह कोई न कोई बहाना बनाकर घर में रूक जाता। रेखा जब बार–बार प्रयास करने के बावजूद अंश को मनाने में सफल नहीं हो पाती, तब न जाने कहाँ से उसका मातृत्व जाग उठता और व तुरन्त फोन से बीस मिनट में डिलीवर करने वाले पिज्जा कम्पनी को पिज्जा आर्डर दे देती। ''मेरे सोना चिन्ता मत करो, मम्मा ने तुम्हारे लिए तुम्हारा फेवरेट वाला पिज्जा आर्डर किया है। मैं चलती हूँ, तुम उसे खाकर सो जाना, कल स्कूल भी तो जाना है।''

''पापा जी मैं नरेन्द्र के साथ जा रही हूँ, रात में आते–आते देर हो जायेगी। आया ने आपका खाना डायनिंग

टेबल पर रख दिया है। दरवाजा बंद कर लीजिये'' ये तो लगभग रोज की बात थी, नरेन्द्र और रेखा अक्सर पार्टियों से देर रात तक आते थे। एक दिन सिंह साहब ने नरेन्द्र से कहा – '' नरेन्द्र तुम लोगों को पार्टियों से आने मे देर हो जाती है। इस उम्र में एक बार नींद टूट जाये तो जल्दी नींद नहीं आती। तुम घर की एक चाभी साथ लेकर जाया करों जिससे तुमको भी कोई परेशानी न हो और... ।'' ''हाँ हाँ हम लोग तो हमेशा बाहर ही घूमते रहे हैं। पास–पड़ोस का कोई सुने तो उसे यही लगेगा हम लोग इनका ध्यान नहीं रखते–रेखा गुस्से से पैर पटकते हुए बोली। सिंह साहब के शब्द गले में अटक कर रह गये, उसके बाद उन्होंने कुछ नहीं कहा और चुपचाप अपने सूने कमरें में आकर सिमट गये।

इस घटना के बाद परिस्थतियों में एक परिवर्तन आया, नरेन्द्र और रेखा अपने साथ घर की चाभियाँ लेकर जाने लगे और अब वे पहले से भी अधिक निश्चिंत होकर जिन्दगी का लुफ्त लेने लगे। कभी–कभी तो सिंह साहब को भी उनके आने की खबर भी न हो पाती। दिन यूँ ही बीतते जा रहे थे। एक दिन रेखा किसी काम से पीछे बरामदे की तरफ चली गई। वह बरामदा पीछे की सड़क से मिला हुआ था। चहार दीवारी के बार घर की सुंदरता के लिए अशोक के पेड़ एक कतार में लगे थे। हवा के तेज झोंके पत्तियों से टकराकर माहौल को खुशगवार बना देते थे। पतझड़ के इस मौसम में धूल और सूखी पत्तियों ने पूरे बरामदे को ढ़ँक रखा था। बरामदे की इस दशा को देख कर रेखा का पारा चढ़ गया। ''क्या–क्या देखूँ घर देखूँ या बाहर। पापा आप तो दिन–भर घर में पड़े रहते हैं, आपसे इतना भी नहीं होता कि किसी नौकर से कह कर इसकी सफाई करवा दें। मैं न देखूँ तो घर में किसी की कोई जिम्मेदारी नहीं।'' सिंह साहब चुपचाप रेखा की बात सुनते रहे। जिस चीज की जिम्मेदारी घर की गृहणी की थी, उस कार्य की उम्मीद उनसे की जा रही है। वे रेखा से क्या कहते, जिस घर में उनके बच्चे उनकी नहीं सुनते तो क्या नौकर उनकी बात सुनेंगे। उन्होंने अक्सर इस बात को महसूस किया था कि घर के नौकर उनकी बातों को अनसुना करके चल देते हैं और बाद में एक दूसरे से काना–फूँसी करके हँसते हैं।

इस घर में तो उनकी कीमत घर में पड़े उन बेशकीमती फर्नीचर की तरह हो गई थी, जिनकी कीमत शो–रूम से बाहर निकलते ही कम हो जाती है। ये फर्नीचर घर की शोभा बढ़ाते हैं.... पर एक वक्त के बाद ये शोभा भर ही रह जाते हैं। इनका प्रयोग करने वाला कोई नहीं होता। इस घटना के बाद सिंह साहब के जीवन में एक परिवर्तन अवश्य हो गया। वो रोज पीछे बरामदे में झाड़ू लगाते और उसके बाद घर से मॉर्निंग वॉक के लिए निकलते। यह उनके रोज की दिनचर्या हो गई थी। ये मिश्रा जी का सौभाग्य कहें या फिर सिंह साहब का दुर्भाग्य, एक दिन मिश्रा जी की नींद रोज की अपेक्षा थोड़ा जल्दी खुल गई। पहले तो वो करवटें बदलते रहे..... पर हर प्रयास विफल।

अन्ततः दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर मिश्रा जी मॉर्निंग वॉक के लिए निकल लिए....। आज पता नहीं उनके मन में क्या विचार आया कि चलो सिंह साहब को भी साथ ले लेते हैं। तभी उन्होंने देखा कि सिंह साहब एक हाथ में झाड़ू और एक हाथ में सूखी पत्तियों की डलियाँ लिए घर से बाहर निकल रहे हैं। सूरज अभी पूरी तरह से निकला भी न था। मुँह ऊंधेरे मिश्रा जी को यूँ अचानक अपने घर के बाहर देख सिंह साहब अचकचा गये। सिंह साहब को असमंजस में डूबा देखा मिश्रा जी बोल पड़े –''गुड मॉर्निंग सिंह साहब। इतनी सुबह ये क्या हो रहा है।'' ''कुछ खास नहीं मिश्रा जी आज कल घुटनों में दर्द रहने लगा है, इसलिए पीछे बरामदे में सुबह–सुबह झाडू लगा देता हूँ..... एक्सरसाइज की एक्सरसाइज और सफाई की सफाई'' कह कर सिंह साहब मुस्कुरा दिये।

मिश्रा जी ने ध्यान से उनके चेहरे की ओर देखा जैसे वह उनके चेहरे पर फैली मुस्कान के पीछे छुपे हुए दर्द को पढ़ना चाहते हों। ''मिश्रा जी आज मैं सत्तर साल का हो गया।'' ''ओह...हो क्या बात है। सालगिरह की बहुत–बहुत शुभकामनायें। ईश्वर आपको लम्बी उम्र दें, आपकी हर मनोकामना पूरी करें''– मिश्रा जी ने बड़े उत्साहित हो कर कहा। ''लम्बी उम्र नहीं, स्वस्थ रहने की ईश्वर से कामना कीजिए''– सिंह साहब ने गम्भीर मुद्रा में कहा। आसमान में सूरज अपनी सुनहरी किरणों के साथ मंद–मंद मुस्कुरा रहा था, पर कहीं दूर कोई दिल अपनी किरणों के साथ डूब रहा था और मेरे अंदर बहुत कुछ टूट सा रहा था।

•

पता : छोटी बसही, मिर्जापुर,

उत्तर प्रदेश–231001

मो. : 9415479796

मेरी यादों में गाँव

❑ रंगनाथ दुबे

आज ऑफिस जाने के बाद प्रशांत को पता चला कि इस बार दीपावली बारह नवंबर को पड़ रही है। ऐसे में उसके साथ काम करने वाले साथियों ने कहा कि– यार कई महीने हो गए सोच रहा हूं कि इस बार दीपावली की छुट्टी में गांव चला जाऊं। गांव का नाम सुनते ही मेरे मन में भी आया कि, इस बार मैं भी दीपावली की छुट्टी में अपने गांव चला जाऊं। खैर! उस दिन ऑफिस के काम में मेरा अन्य दिनों की अपेक्षा कम मन लगा। घर आने के बाद हाथ मुंह धुलकर कपड़े बदलकर जैसे ही खाली हुआ वैसे ही एक बार फिर से ऑफिस की बात ज़ेहन में गूँजने लगी कि यार सोच रहा हूं कि ''इस बार दीपावली की छुट्टी में गांव चला जाऊं।''

इस सोच से थोड़ी सी राहत पाने के लिए मैंने प्लास्टिक की कुर्सी ली और फ्लैट की खिड़की के पास बैठकर बाहर आते–जाते और बेतहाशा भाग रहे लोगों को देखने लगा लेकिन तब भी मेरे मन के अंदर के यादों की बेचैनी थी, कि जो कम होने का नाम ही नही ले रही थी। आखिर उसे इस मुंबई से अपने गांव गए हुए पूरे तीस वर्ष हो गए थे। जब वह इस महानगर में कमाने और खाने के लिए आया था तब उस समय प्रशांत काफी युवा और जवान था और उसकी आंखों में तमाम सपने थे लेकिन इन चालीस वर्षों में जिंदगी के तमाम उतार–चढ़ाव के साथ ही उसकी आंखों पर नज़र के चश्मे के साथ ही उसके सर के बाल भी यहां वहा से अधपके खिचड़ी की तरह हो गए थे। वैसे यह बेचैनी प्रशांत के लिए नई नही थी, उसे प्रति वर्ष दीपावली के आस–पास अपने गांव का सुनहरा बचपन, दीपावली और मिट्टी के जलते हुए दिए याद आने लगते थे।

सच ! उस दीपावली को फिर से ना मना पाने की कसक उसे बेचैन कर देती थी। ऐसा नहीं कि, इस कंक्रीट के महानगर

ने इन बीते वर्षों में दीपावली ना मनाई हो। मेरे गांव के मिट्टी के दियों से भी ज्यादा झालर और रौशनी किया और पटाखे फोड़े इस महानगर ने, लेकिन इस दीपावली में एक बनावटीपन था। उसका कारण शायद इस महानगर की आपा–धापी भागम–भाग और एक दूसरे से ज्यादा पैसा कमा लेने की अंधी दौड़ जहा सिर्फ लोग दौड़ रहे है, भाग रहे है और उनमें थकन–उबन घबराहट सब है लेकिन एक दूसरे को बताने तक की फुरसत नहीं।

प्रशांत यह सब याद कर ही रहा था कि, तभी प्रिया यानी उसकी पत्नी ने कॉफी का मग प्रशांत के हाथो में पकडाते हुए कहा– ये क्या आज आप कुछ बेचैन से लग रहे है तबियत तो ठीक है ना आपकी ? मैंने जबरदस्ती की मुस्कुराहट अपने होठों पर लाते हुए कहा कि, हाँ! क्या हुआ मेरी तबियत को ठीक तो है। तो फिर यूँ गुमसुम आप खिड़की खोलकर बाहर की तरफ क्या देख रहे है? वैसे पत्नी चाहे जैसी भी हो वह अपने पति के चेहरे के हाव–भाव को भांप ही लेती है। फिर भी उसके सवाल–जवाब से बचने के लिए प्रशांत ने कहा– प्रिया अगले हफ्ते दीपावली है, मैं सोच रहा हूं कि दीपावली की शाम या रात को यहां के सारे फ्लेट जगमगा उठेंगे और मैं अपने गांव की दीपावली के उस मिट्टी के दिए को याद करके हर बार की तरह तड़पकर रह जाऊंगा। जबकि मैं जानता हूं कि, यह सारे फ्लैट सिर्फ फ्लैट है जहाँ दीपावली की रौशनी तो लोग करेंगे, लेकिन मेरे गांव के दीपावली की वह रौशनी मुझे इस महानगर के किसी भी फ्लैट से आती हुई नही दिखाई पड़ेगी।

प्रिया से मेरी शादी को पूरे पैंतीस वर्ष हो गए वह शादी के दो वर्ष बाद ही मेरे साथ मुंबई आ गई इस बीच प्रिया ने मुंबई की ठसक और अंदाज को अपने में आत्मसात कर लिया उसने अपने गांव के सीधे–साधे पन को बहुत पीछे छोड़ दिया। वैसे इस मुंबई को लोग माया नगरी कहते है और यही सच भी है। इस माया नगरी की माया में फसा हुआ व्यक्ति यही की माया का हो करके रह जाता है लेकिन मुझे मुंबई की इस माया ने शायद थोड़ा बहुत इसलिए छोड़ रखा था क्योंकि मेरी यादों में गांव की मिट्टी के साथ कुछ पूराने कण रह गए थे। इसी सब में कॉफी ठंडी हो गई थी मैंने झट कॉफी पीकर मग को वही अपने बगल फर्श पर रख दिया और एक बार फिर से गांव की यादों में खो गया लेकिन अब कुछ दृश्य उभर रहे थे। मुझे दूर गांव का वह पोखर दिखाई पड़ने लगा था।

जहाँ हमारे गांव के कल्लू कुम्हार मिट्टी के दिए बनाने के लिए फावड़े से मिट्टी खोद रहे थे। वैसे मेरे गांव में और भी कुम्हार के घर थे लेकिन वह अकेले ही मिट्टी के दिए बनाने का कार्य करते थे। गांव के कुम्हार अक्सर कहते थे कि– 'भाई यह बहुत मगजमारी और मेहनत का काम है जो हम लोगों के बस का नहीं यह काम कल्लू कुम्हार ही कर सकते है।' दिवाली के दिए बनाने की तैयारी वह दीपावली के एक महीने पहले से ही शुरू कर देते थे। मिट्टी खोदते समय जब वह थक जाते तो अपनी पुरानी मैली–कुचौली मर्दानी धोती (जो कि, मिट्टी का काम करने की वजह से मैले हो जाते थे) में से कच्ची सुरती और चुने से भरी एक छोटी सी स्टील की चुनौटी निकालते और उसमे से चुने और सुरती को हथेली में निकाल कर थोड़ी देर रगड़ते फिर उसे ठोक कर अपने होठों में दबाकर एक बार फिर से मिट्टी खोदने में जुट जाते।

फिर सारी मिट्टी को एक झौआ (बांस से बनी टोकरी) में थोड़ा–थोड़ा भरकर कच्चे पोखरे से थोड़ी दूर बगीचे में बने हुए एक कमरे की कच्ची कोठरी (जो कि मिट्टी से ही बनती थी) के पास आम के पेड़ के नीचे लाकर रखते। फिर उसमे से आधी मिट्टी सानने के लिए अलगकर उसमें पानी डालकर रौदना शूरू कर देते। इस बीच छोटी से छोटी कंकरी भी वह मिट्टी में से निकालकर बाहर फेक देते थे। तब तलक उनकी पत्नी चनरा गांव वाले घर से बहुओं के हाथ से बना खाना उनके लिए एक थाली में सूती कपड़े से ढक कर ले आती और अपने पति से कहती कि, चलिए ! हाथ मूंह धुलकर खा लीजिए। काम तो लगा रहेगा, फिर खाना खाकर एकाध घंटे आराम करने के बाद चाक पर मिट्टी का बड़ा सा लोया रखकर बगल में रखे डंडे से वे चाक को नचाते फिर दिया बन जानें पर वह बगल में रखी पानी की छोटी सी कटोरी में से धागा निकालकर उसे काटते और अपने बगल में रखते जाते थे। जब दिया ज्यादा हो जाता तो चनरा जिसे गांव के सभी लोग काकी कहते थे वह दिए को कल्लू काका के बगल से थोड़ा दूर रखती जाती, ताकि वह नए दिए को काटकर काकी के द्वारा खाली जगह पर फिर से रख सकें। एक तरह से उस दिए को काका और काकी एक दूसरे के सहयोग से तैयार करते थे।

फिर सारे दिए जब अच्छी तरह सुख जाते तो वह उन सारे दियो को आग में अच्छी तरह से पकाते थे, पूरे गांव को काका, काकी और उनका पूरा परिवार दीपावली के दो दिन पहले ही मिट्टी के दिए घंटी और दो बड़े दिए (जिसमे कि दीपावली के दिन काजल पारा जाता था) पहुंचाते थे और दीपावली के दिन घर के सभी लोग एक साथ बैठकर उस

दिए को खूब अच्छी तरह पानी से धुलते थे और धुलने के बाद आधे घंटे तक उसे वैसे ही रहने देते थे। हम लोग भी यही करते थे जब शाम काफी गहरा जाती तो हम भी अपनी, दादी, मां और बुआ के साथ बैठकर उस दिए में तेल और रुई की बाती डालते जाते और दादी रूई बना बनाकर हम सभी को देती थी, जिसे थाली में रखकर पहले पूजा वाली जगह पर हम सभी मिठाई और दिया जलाकर पूजा करते फिर इसके बाद सारी जगह दिया जलाकर रख देते।

उस मिट्टी के दिए की रौशनी में एक शीतलता थी, इसके बाद पटाखे छुड़ाने की जल्दी में जैसे ही जाने को होते तभी दादी थोड़ा सा डाटते हुए कहती कि– रुक रे! पटाखे बाद में फोड़ना पहले कुछ देर अपनी किताब खोलकर पढ़ लो और मां सरस्वती की पूजा करके तब पटाखे फोड़ना नही तो मां सरस्वती नाराज हो जाएगी और तुम सभी गधे के गधे रह जाओगे। अब ऐसे में हम सभी के सामने दादी की बात मानने के अलावा कोई चारा भी नहीं बचता था। अतः हम सभी भून भुनाते हुए आधे मन से पढ़ते। तब उस समय इतने सारे पटाखे भी फोड़ने के लिए नहीं मिलते थे। तब जितना पूरा गांव मिलकर पटाखे फोड़ता था आज उतना पटाखा तो एक फ्लैट के लोग फोड़ देते है। दरअसल तब उसका एक कारण था कि, तब लोगो के पास उतने पैसे नही होते थे।

लेकिन आज पटाखे उसकी आवाज और शोर में वह पटाखे जलाने की खुशी उल्लास और बचपन नही है बल्कि पटाखों के धुंए में एक दम घोट देने वाली घुटन है। तभी आंख पर चढ़े चस्मे को जैसे ही साफ करने के लिए निकाला तो मेरी आंखो को तीस वर्ष पुरानी बुआ कि अंगुलियों से लगाई हुई काजल की याद हो आई। दरअसल कुम्हार के बड़े से मिट्टी के दिए में पटाखे वटाखे छुड़ाने के बाद बुआ उसमें काजल पारने के लिए रख देती थी। उसमे वह शुद्ध सरसों के तेल और कपूर का प्रयोग करती थी ऐसा नहीं की घर में कोई और काजल पारना नही जानता था लेकिन सभी कहते थे कि बुआ के काजल की बात ही कुछ अलग है। उन दिनों जो बच्चे काजल लगाने में थोड़ी बहुत आना कानी किया करते थे उन्हें डराने और काजल लगाने के लिए घर की महिलाएं कहती थी कि, जो बच्चा आज की रात काजल नहीं लगाता उसका अगला छछूंदर के रूप में होता है।

अब इस बात में कितनी सच्चाई थी या क्या गलत क्या सही था यह तो नहीं पता पर उस रात लोग अपनी आंख में काजल लगवाते अवश्य थे। वैसे मुझे बुआ के हाथ से काजल लगवाना ज्यादा अच्छा लगता था वह बड़े ही प्यार से काजल लगाती और आंख में ठंडे–ठंडे कपूर के एहसास से आनंद आ जाता। घर के बड़े बूढ़े भी बताते की इससे आंख की रौशनी बढ़ती है और सच ! दीपावली के दूसरे दिन शायद ही गांव के किसी व्यक्ति की आंख बिना काजल लगाएं हुए दिखाई देती थी आज इतने वर्ष बाद आंख पर चस्मा चढ़ गया लेकिन बुआ के अंगुलियों का वह काजल फिर आंखो में लग नही पाया। इस बीच गांव के कुछ लोग मिले तो उन्होंने बताया कि, कल्लू कुम्हार मर गए उनके मरने के कुछ दिनों बाद ही चनरा काकी भी चल बसी। मैंने पूछा तो दीपावली के मिट्टी वाले दिए अब कौन बनाता है तो उसने मुस्कुराते हुए कहा कि, शायद तुम्हें नहीं पाता सारे गांव का मकान अब पक्का बन गया है और उन घरों में अब मिट्टी के दिए नहीं चीन की झालरे लटकती है।

खैर! यार तुम क्या जानो गांव से आने के बाद वहीं दोबारा तुम अपने मां–बाप के मरने पर ही गए थे उसके बाद तो गए ही नहीं। उसकी उस बात से मेरे दिल को एक धक्का सा लगा लेकिन फिर दो–तीन वर्ष में भूल गया। इस बार जरुर गांव जाऊंगा और ''नई दीपावली से छिपकर कुछ मिट्टी के दिए जलाकर पूरानी दीपावली से माफी मागूंगा'' तभी मैंने पूरी दृढ़ता के साथ प्रिया को अपने पास बुलाया और उससे मैंने कहा कि,–प्रिया मेरे कुछ कपड़े पैक कर दो! प्रिया ने चौकते हुए पूछा,–क्यों दरअसल मैं कल गांव जा रहा हूं तभी प्रिया ने कहा अकेले उसके मूंह से इतना सुनते ही मैं चौक गया और जैसे ही मैंने उससे कुछ कहने के लिए अपना मूंह खोला वैसे ही प्रिया ने अपना हाथ मेरे मूंह पर रख दिया और बोली मैं मुंबई में रहकर बदली जरुर हूँ लेकिन अगर मेरे पति नहीं बदले उनका प्यार नहीं बदला तो फिर आपने सोच कैसे लिया की आपकी यह प्रिया बदल जाएगी। मैं भी आपके साथ गांव चलूंगी लेकिन बच्चें वे अब बड़े हो गए हैं और हमने उनका शादी ब्याह भी कर दिया है इतना कह कर प्रिया जैसे ही कपड़े पैक करने के लिए पलटी वैसे ही प्रशांत को अपनी आंखो में बुआ के अंगुलियों के काजल की वही ठंडक फिर से महसूस होने लगी जो बुआ ने गांव की हर दीपावली की रात को उसकी आंखो मे लगाया था।

•

पता : जज कॉलोनी, मियांपुर
जिला–जौनपुर–222002
मो. : 7800824758

प्रखर आलोचक : शची रानी गुर्टू

❑ डॉ. शुभा श्रीवास्तव

हिंदी साहित्य में जब भी आलोचना की बात होती है तो स्त्री आलोचकों में एकमात्र नाम निर्मला जैन का उदाहरण स्वरूप दिया जाता है। हिंदी साहित्य का आधा इतिहास लिखने वाली सुमन राजे का भी यह मानना है कि ''आत्मकथा और समीक्षा का क्षेत्र भी लगभग सूना ही पड़ा है। हिंदी में समीक्षा के क्षेत्र में महिलाओं ने बहुत कुछ नहीं किया यह मानने में कोई गुरेज नहीं है लेकिन जो कुछ भी किया उसके प्रति भी उदासीनता बरती गई यह आपत्तिजनक है।'' (हिंदी साहित्य का आधा इतिहास : सुमन राजे, पृष्ठ 295–300) सुमन राजे ने समीक्षा के क्षेत्र में सिर्फ महादेवी वर्मा, निर्मला जैन, गिरीश रस्तोगी, और स्वयं अर्थात् अपना नाम गिनाया है।

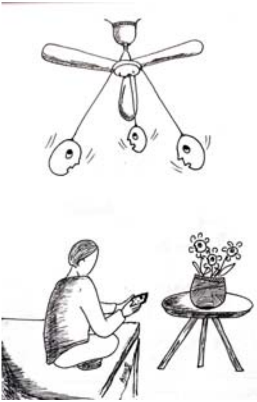

हिंदी साहित्य में विभिन्न लेखों के माध्यम से आलोचना में प्रवेश स्त्री आलोचकों ने बहुत पहले से ही कर दिया था परंतु किसी ने नोटिस नहीं लिया। महिला दर्पण पत्रिका जनवरी 1920 में चंद्रावती लखन पाल ने ''भारत में स्त्री जाति का भूत वर्तमान और भविष्य'' नामक लेख लिखा। इसी प्रकार से ''समाज का परिष्कार'' (कुमारी किरणमई), ''स्त्री समाज की समस्याएं'' (हेमंत कुमारी 'विद्या विनोदिनी)', ''स्त्रियों की उन्नति'' (सत्यवती शुक्ला) जैसे लेख हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे जिसे इतिहासकारों ने कभी आलोचना की श्रेणी में शामिल नहीं किया। अगर हिंदी साहित्य के विशेष परिप्रेक्ष्य में भी देखा जाए तो होमवती देवी का लेख ''साहित्य जीवन के साथ एक अखंड सूत्र है'' (महिला पत्रिका, 1940) आशारानी व्होरा का लेख ''हंसों की जमात और समय के पंख'' (कल्पना अंक 219) इत्यादि लेख स्त्री आलोचकों की मौजूदगी के साक्ष्य है जिन्हें चाह कर के भी मिटाया नहीं जा सकता है, इतिहास में दर्ज होना या ना होना एक अलग तथ्य रखता है।

आलोचना का एक अन्य पक्ष पुस्तककीय आलोचना भी है। हिंदी साहित्य में इस प्रकार की समीक्षाएं भी स्त्री आलोचकों के द्वारा की गई

है जैसे तारा देवी द्वारा होमवती देवी के काव्य संग्रह अर्घ की समीक्षा महिला पत्रिका (1939) में अक्टूबर के अंक में साहित्यालोचन शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हुई थी। इसी प्रकार से 1920 में चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का ''हिंदी की दो कविता पुस्तकें'' पुस्तक समीक्षा का ही उदाहरण कहा जा सकता है परंतु इन सबको आज तक आलोचक नकारते चले आए हैं और निरंतर एक ही बात कही जाती है कि हिंदी साहित्य में आलोचना के क्षेत्र में स्त्री रचनाकारों की सहभागिता नहीं है। एक और उदाहरण देना चाहूंगी कल्पना के फरवरी 68 अंक में प्रेमलता वर्मा का एक साक्षात्कार प्राप्त होता है जिसमें उनसे तत्कालीन समय की साहित्यिक विधाओं पर एक लंबा साक्षात्कार लिया गया है और एक सजग आलोचक के समान उन्होंने उन प्रश्नों का उत्तर भी दिया है जिससे तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों और रचनाकारों के वैशिष्ट्य का पता चलता है। इस साक्षात्कार से यह भी सिद्ध होता है कि प्रेमलता वर्मा एक आलोचक के रूप में उस समय स्थापित थी। परंतु प्रेमलता वर्मा का नाम हम आलोचक के रूप में क्या साहित्यकार के रूप में भी हिंदी साहित्य के इतिहास में नहीं पाते हैं। इससे पहले भी आलोचना का सूत्रपात स्त्री आलोचकों ने प्रारंभ कर दिया था जिस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

आलोचना का एक अन्य पक्ष पुस्तककीय आलोचना भी है। हिंदी साहित्य में इस प्रकार की समीक्षाएं भी स्त्री आलोचकों के द्वारा की गई है जैसे तारा देवी द्वारा होमवती देवी के काव्य संग्रह अर्घ की समीक्षा महिला पत्रिका (1939) में अक्टूबर के अंक में साहित्यालोचन शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हुई थी। इसी प्रकार से 1920 में चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का ''हिंदी की दो कविता पुस्तकें'' पुस्तक समीक्षा का ही उदाहरण कहा जा सकता है परंतु इन सबको आज तक आलोचक नकारते चले आए हैं और निरंतर एक ही बात कही जाती है कि हिंदी साहित्य में आलोचना के क्षेत्र में स्त्री रचनाकारों की सहभागिता नहीं है।

वस्तुतः हिंदी में आलोचना साहित्य की शुरुआत बंग महिला से माना जाना चाहिए। हिंदी में उपलब्ध उनके निबंध चंद्रदेव से मेरी बात, हिंदी के ग्रंथकार, स्त्रियों की शिक्षा, हमारे देश की स्त्रियों की दशा जैसे निबंध उनके समालोचक होने के प्रमाण स्वयं बयान करते हैं। 1904 में समालोचक पत्रिका में प्रकाशित हिंदी के ग्रंथकार निबंध में तत्कालीन समय के प्रतिष्ठित साहित्यकारों को जिस बेबाकी और निर्भीकता के साथ बंग महिला चुनौती देती हैं और साहित्यिक झूठ का पर्दाफाश करती हैं वह चाहकर भी इतिहास से छुपाया नहीं जा सका है। परंतु बंग महिला का उल्लेख हम हिंदी साहित्य में मात्र पहली कहानी दुलाईवाली के कहानीकार के रूप में ही जानते हैं आलोचक के रूप में नहीं।

हिंदी साहित्य में प्रारंभ से ही स्त्रियों का उपेक्षित होना कोई नई बात नहीं रही है। बंग महिला से प्रारंभ हुई यह उपेक्षा बरकरार है। साहित्य की अन्य विधाओं में तो स्त्री विमर्श के माध्यम से कई मुद्दे सामने आए हैं परंतु आलोचना के क्षेत्र में अभी भी यह भाव मौजूद है। आज ऐसी ही एक उपेक्षित समालोचक शची रानी गुर्टू की चर्चा करूंगी जिनके जन्म शताब्दी वर्ष पर पूरे साहित्य में एक सन्नाटा पसरा हुआ है। शची रानी गुर्टू को समालोचक के रूप में प्रतिष्ठा देना तो दूर की बात है उनके संदर्भ में कभी चर्चा तक नहीं हुई और उपेक्षा का आलम यह है कि उनके जन्म शताब्दी वर्ष पर कहीं कोई शुभकामना भी देखने को नहीं मिल रहा है।

1 मार्च, 1923 को कनखल, हरिद्वार, उत्तर प्रदेश में जन्मी शची रानी गुर्टू हिंदी और इंग्लिश दो साहित्यिक विषयों से परास्नातक डिग्री को धारण करने वाली स्त्री रही हैं। सन् 1923 का समय और तत्कालीन समय में दो विषयों में परास्नातक होना अपने आप में बड़ी बात है। शची रानी गुर्टू जी के पिता इंद्र नारायण गुर्टू से इन्हें बराबर सहयोग मिलता रहता था। इनके मौलिक ग्रंथों की अगर बात की जाए तो साहित्य दर्शन (दो खंडों में), वैचारिकी, विश्व की महान महिलाएं, कलादर्शन, भारतीय कलाकार मुख्य रूप से समीक्षात्मक पुस्तकें हैं। इनकी संपादित पुस्तकों में सुमित्रानंदन पंत रू काव्य कला और जीवन दर्शन, महादेवी वर्मा रू काव्य कला और जीवन दर्शन, प्रेमचंद्र और गोर्की, हिंदी के आलोचक आदि विशेषतया प्रसिद्ध हैं। शची जी ने अनुवाद का भी कार्य किया है। उन्होंने डाक तार निर्देशिका का हिंदी में अनुवाद किया है। इसके साथ ही डाक खानों का इतिहास भी अनुदित पुस्तक है। प्रवाह पत्रिका की संपादक के रूप में लंबे समय तक इन्होंने सेवा देकर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है।

साहित्य के अतिरिक्त भी शची रानी ने अपना लेखन किया है। आत्माराम एंड संस से 1951 में प्रकाशित जगजीवन राम ऑन लेबर प्रॉब्लम पुस्तक इसका उदाहरण है। साहित्य सदन देहरादून से सन् 1968 ई. में 165 पेज की अच्छी

कहानियां शीर्षक से इनका कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुआ था जो वर्तमान समय में अप्राप्त है। इसके अतिरिक्त टूटता धागा कहानी संग्रह का भी उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है परंतु वर्तमान समय में यह कहानी संग्रह अप्राप्त है।

शची रानी ने आलोचनात्मक लेखन के अतिरिक्त दिल्ली से निकलने वाली प्रवाह पत्रिका का लंबे समय तक संपादन भी किया है। महिला पत्रिका की एक प्रति में प्रवाह पत्रिका के महिला विशेषांक के लिए एक विज्ञापन भी प्रकाशित करवाती हैं जिससे यह पता चलता है कि महिला लेखन के प्रति वह विशेष रूप से सजग थीं। कल्पना पत्रिका में एक विज्ञापन लिखा मिलता है कि ष्आगामी अप्रैल सन् 1952 को प्रवाह पांचवे वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इस अवसर पर हम महिला विशेषांक निकाल रहे हैं, जिसमें भारतीय साहित्य, कला, संस्कृति के सृजन में सहयोग देने वाली भारतीय कवि, कलाकार महिलाओं के व्यक्तित्व और कृतित्व की सचित्र झांकी प्रस्तुत की जाएगी। इसमें हिंदी के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि साहित्यकार महिलाओं के कृतित्व की भी विशद विवेचना रहेगी। देशी विदेशी प्रमुख विद्वानों को लेख के लिए आमंत्रित किया जा रहा है। (संपादक– शचीरानी गुर्टू) इन दोनों महिला विशेषांक के विज्ञापनों का उल्लेख करने का उद्देश्य यह बताना है कि गुर्टू जी महिला लेखन के प्रति विशेष सजग थी और अपने संपादन में उन्होंने महिला विशेषांक भी प्रकाशित किए हैं। इतना सृजनात्मक योगदान देने के बावजूद हिंदी साहित्य के इतिहास में उनका नाम क्यों गुम है इसका उत्तर किसी के पास नहीं है।

सन् 1950 ई. में प्रकाशित साहित्य दर्शन पुस्तक दो खंडों में विभक्त है। इस पुस्तक में शची जी विश्व साहित्य और हिंदी साहित्य का तुलनात्मक विमर्श प्रारंभ करती है। वस्तुतः तुलनात्मक विमर्श की दृष्टि से यह अपने आप में अनूठी कृति है जिसमें हमें उनके विस्तृत ज्ञान का आभास प्राप्त होता है। विश्व साहित्य के प्रत्येक पक्ष पर तटस्थ मूल्यांकन इस पुस्तक का वैशिष्ट्य है। स्त्री समालोचक में तुलनात्मक आलोचना का हिंदी साहित्य में प्रवेश शची जी ही कराती हैं। दूसरे शब्दों में कहूँ तो स्त्री आलोचक के इतिहास में तुलनात्मक आलोचना का प्रारम्भ शची रानी करती हैं। विश्व साहित्य और हिंदी साहित्य को रेखांकित करते हुए कालिदास और शेक्सपियर, तुलसी और मिल्टन, गेटे और प्रसाद, मैथिलीशरण और रोबर्ट बर्न्स, चेखव और यशपाल, अज्ञेय और इलियट जैसे रचनाकारों को एक दूसरे के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए वह उनके वैशिष्ट्य को तो ध्यान में रखती हैं साथ ही उनकी सामाजिक, राजनैतिक परिदृश्य को भी ध्यान में रखते हुए उनके साहित्य की तुलनात्मक विवेचना करती हैं। साहित्य की खूबियों को गिनाने के साथ ही वह उस परिदृश्य पर भी अपनी दृष्टि डालती हैं जिस परिस्थिति, माहौल में वह रचना रची गई। किसी भी कृति के उदय की पृष्ठभूमि उस कृति का मूल ध्येय प्रस्तुत करती है इससे शची जी परिचित हैं।

शची जी की विशेषता को इस अर्थ में भी देखा जा सकता है कि तत्कालीन समय में किसी भी आलोचक ने विश्व साहित्य की रूपरेखा को प्रस्तुत करने का कार्य न के बराबर किया था परंतु शची जी ने साहित्य दर्शन के माध्यम से यह कार्य किया। इसके साथ ही तुलनात्मक विवेचना का जो रूप हमें हिंदी साहित्य में मिलता है वह हिंदी साहित्य के दो रचनाकारों की तुलनात्मक विवेचना के रुप में मिलता है परंतु शची जी ने इस तुलनात्मक विवेचना को विश्व साहित्य से जोड़ा है। हिंदी आलोचना विधा में यह एक नवीन और साहसिक कार्य है साथ ही हिंदी और विश्व साहित्य को एक दूसरे में जोड़ने का अनुपम कार्य करता है।

शची जी अपनी तुलनात्मक विवेचना में सिर्फ जीवन का तुलनात्मक विवरण ही नहीं प्रस्तुत करती है अपितु एकरूपता, युग भाषा की भिन्नता, परिवेश, परिस्थिति इत्यादि पर भी अपनी दृष्टि डालती हैं। विश्व साहित्य को पढ़ने के बावजूद उनका झुकाव हिंदी साहित्य के प्रति ज्यादा रहा है। उनकी आलोचना में अपनी सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और अपने कवियों के प्रति लगाव ज्यादा प्रदर्शित होता है। शेक्सपियर और कालिदास की विवेचना करते हुए वह कहती हैं कि "शेक्सपियर की उपमाओं में कालिदास की उपमाओं की वह ताजगी, यथार्थ और नूतनता कहां। तथापि कहीं–कहीं उनके नाटकों में भाव व्यंजना बहुत सुंदर और अनूठी है। टेंपेस्ट और शाकुंतलम् में बहुत कुछ सादृश्य भी है।"

इनकी आलोचना की प्रमुख विशेषता है चिंतन मनन के साथ विचार, विश्लेषण और परीक्षण तथा मूल्यांकन करने का साहस। शची जी की सबसे बड़ी प्रवृत्ति है यथार्थ आधारित प्रखर वैचारिक चेतना। जिस नामवर सिंह को हम आलोचना का प्रतिमान मानते हैं उनसे प्रारंभिक आलोचना लेखन शची रानी द्वारा ही कराया गया है। इनकी आलोचनात्मक पुस्तकों का अध्ययन करके यह कहा जा सकता है कि इनकी आलोचना गंभीर है जिसका कारण तर्क और चिंतन पद्धति है।

स्त्री उपेक्षा से शची रानी परिचित थी इसीलिए उन्होंने षविश्व की महान महिलाएंष पुस्तक के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के योगदान को सबके समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। इस पुस्तक में वह विजयलक्ष्मी पंडित, अमृत कौर, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, मैडम क्यूरी, एनी बेसेंट, सरोजिनी नायडू, कस्तूर बा के साथ ही महादेवी वर्मा आदि पर विचार प्रस्तुत करती हैं। जीवन परिचय के साथ ही इन महिलाओं की दृढ़ निश्चय और अपने क्षेत्र में मानदंड स्थापन करने के कार्य को वह इस प्रकार से प्रस्तुत करती हैं कि वह अन्य लोगों के लिए एक नया आदर्श बन जाए। विश्व की महान महिलाएं की भूमिका में वह कहती हैं कि ''किसी भी देश अथवा राष्ट्र की सुदृढ़ नींव नारी की चरम उन्नति की द्योतक है। नारी दीन हीन अथवा अबला नहीं, वह नारीत्व की कोमलता एवं प्रकाश से पूर्ण हो आज के प्रगतिशील युग में स्त्रियां पुरुषों से समानता का ही नहीं वरन श्रेष्ठता का दावा कर रही हैं।''

महादेवी वर्मा : काव्य कला और जीवन दर्शन पुस्तक सन् 1951 में प्रकाशित हुई थी। महादेवी वर्मा पर यह पुस्तक बहुत कुछ कहती है। महादेवी वर्मा पर सर्वप्रथम सम्यक विवेचन करने का कार्य शची रानी ने ही किया। इसमें वह महादेवी वर्मा के जीवन से ही परिचय नहीं कराती हैं बल्कि उनकी काव्यात्मक वैशिष्ट्य पर भी चर्चा करती हैं। महादेवी वर्मा के संदर्भ में वह कहती हैं कि ''महादेवी वर्मा प्रधानता अंतरूवृत्ति निरूपक कवयित्री हैं। वह अपने भीतर स्वयं को तथा वस्तु जगत को देखती हैं साथ ही उस निराकार की भी उपासिका है जो विश्व के कण–कण में प्रकृति की अनंत सौंदर्य श्री में आभासित है।'' महादेवी वर्मा जैसी रचनाकार के काव्य पक्ष पर ही अपना ध्यान केंद्रित करना शची जी की सीमा को इंगित कराता है परंतु शची जी की अपनी सीमाएं रही होंगी जिस कारण उन्होंने ऐसा किया होगा, परंतु तत्कालीन समय में समीक्षा के सूने क्षेत्र में उन्होंने इतना कार्य किया वह भी सराहनीय है।

सुमित्रानंदन पंत : काव्य कला और जीवन दर्शन पुस्तक में शची ने राहुल सांकृत्यायन, शमशेर बहादुर सिंह, शांति प्रिय द्विवेदी, इंद्रनाथ मदान, प्रभाकर माचवे, नगेंद्र, रामविलास शर्मा जैसे सुप्रसिद्ध समालोचक से सुमित्रानंदन पंत के काव्य के विविध पक्षों पर लेख लिखवाए हैं जो पंत जी के संपूर्ण व्यक्तित्व को व्यक्त करते हैं। आलोचना के क्षेत्र में संपादक होने का सबसे बड़ा गुण होता है की संपादक की दृष्टि समीक्ष्य कृति या साहित्यकार के प्रत्येक पक्ष पर तटस्थ होनी चाहिएद्य शची जी ने अपने संपादकीय कर्म में इस बात का विशेष ध्यान रखा है, जिसका प्रमाण यह पुस्तक है। पंत के विविध पक्षों को रूपायित करते हुए पंत और शेली पर स्वयं शची रानी ने अपनी कलम चलाई है। वह कहती है कि ''ओस कण की ही भांति शेली और पंत की अनुभूति अग्राह्य और उच्च मनोयोग में सुस्थिर है।'' शची जी के उक्त कथन में तुलनात्मकता के साथ सूत्रात्मकता का गुण भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

प्रेमचंद इन के प्रिय लेखक हैं। वह इसलिए प्रिय हैं क्योंकि उन्होंने जनता को अपनी कला का शक्ति स्रोत माना है। शची जी यह मानती है कि जनता से पृथक होकर महान साहित्य की रचना नहीं की जा सकती है। प्रेमचंद का साहित्य तत्कालीन भारत और स्वाधीनता आंदोलन की छवि है जिसमें सामान्य मनुष्य की वस्तु स्थिति का चित्रण है। इसीलिए प्रेमचंद को युग निर्माता कहा जाता है। प्रेमचंद की इन्हीं विशेषताओं को रेखांकित करते हुए वह प्रेमचंद को गोर्की से भी बड़ा लेखक मानती हैं। प्रेमचंद व्यक्तित्व एवं कृतित्व पुस्तक में वह प्रेमचंद के यथार्थ पर विस्तृत चर्चा करती हैं। प्रेमचंद के पात्रों के संदर्भ में वह कहती हैं कि ''नित्य प्रति के जीवन क्षेत्र में जैसे मनुष्य मिलते हैं वहीं प्रतिकृति प्रेमचंद खींचते हैं। जैसा संसार का वास्तविक व्यवहार है वैसा ही प्रेमचंद अपने कथा साहित्य में रखते हैं। ग्रामीण जीवन का विशेष रेखांकन प्रेमचंद की विशेषताएं हैं।''

वैचारिकी निबंध संग्रह में नई कहानी, नई कविता आदि पर भी विचार प्रकट किया है। नई कहानी में वह प्रश्न करती है की कहानी कैसी होनी चाहिए? स्त्री लेखिकाओं के संदर्भ में जब पुरुष आलोचक उदासीन थे तब शची रानी ने उन पर अपनी कलम चलाई है। नई कहानी के दौर में सभी कहानीकारों के वह नाम ही नहीं बताती है बल्कि उनकी विषय वस्तु, मनोवैज्ञानिक पक्ष की बारीक पड़ताल भी करती हैं, साथ ही उनके वैयक्तिक वैशिष्ट्य को भी रेखांकित करती हैं। यह बेहद आश्चर्य का विषय है कि यह लेख कैसे इतिहासकारों की नजर से नहीं गुजरा जो हिंदी स्त्री इतिहास का ढांचा खड़ा करता है। इस लेख में वह मीरा, रत्नावली, बनीठनी, प्रवीण राय से लेकर अपने समकालीन शकुंत माथुर इत्यादि नई कविता की रचनाकारों तक चर्चा करती हैं। इन स्त्री कवयित्रियों के वैशिष्ट्य के साथ ही वह सीमाओं तथा कमियों पर विचार करती हैं।

हिंदी के आलोचक पुस्तक में हिंदी के प्रमुख आलोचकों के संदर्भ में विभिन्न समालोचकों के लेख का संपादन शची ने किया है। हिंदी के आलोचक पुस्तक की भूमिका में वह कहती हैं कि आलोचकों पर प्रामाणिक सामग्री की कमी थी इस विचार से यह संकलन किया गया है। इससे स्पष्ट था कि आलोचकों की उपेक्षा से शशि जी परिचित थी। आलोचना की परिपक्वता और गंभीरता पर भी उनकी दृष्टि बराबर थी तभी वह कहती है कि– ''हमारी वर्तमान आलोचना स्तर क्या है? पाठकों की मांग क्या है और उसकी किस प्रकार पूर्ति हो रही है यह किसी ने कदाचित सोचने का कष्ट नहीं किया। तर्क वितर्क और वाद–विवाद का आग्रह जोरों पर है जिससे उसमें साधन संबल बटोरने को शक्ति बढ़ी है पर साहित्य को यह शंकाकुल स्थिति जीवन और जगत के गतिमय प्रेरक तत्वों को कितने समय तक रुपायित कर सकेगी यह समझना होगा।'' (हिंदी के आलोचक पृष्ठ 21)

एक आलोचक की आलोचना करना अपने आप में अनूठा और साहसिक कार्य है। साहसिकता, निडरता और निर्भयता शची जी का प्रधान गुण है। प्रेमचंद और गोर्की पुस्तक में वह रामविलास शर्मा को उद्धृत करती हैं और बड़ी स्पष्टता और निर्भीकता से कहती हैं कि ''प्रेमचंद और गोर्की की तुलना क्यों नहीं की जा सकती और गोर्की को प्रेमचंद से हीन क्यों नहीं सिद्ध किया जा सकता? और सबसे पहले यह सिद्ध करने का श्रेय भी डॉक्टर रामविलास शर्मा को है। सच तो यह है कि साहित्य के इस डॉक्टर ने एक ही तीर से विश्व के तीन महान लेखकों टॉलस्टॉय, दस्ताबस्की और गोर्की को प्रेमचंद के मुकाबले में धराशायी कर दिया। उन्होंने युग के साथ होने की जनवादी कसौटी पर कस कर सिद्ध किया कि अनेक दृष्टियों से यह महान लेखक अपने युग से पिछड़े थे।'' (प्रेमचंद और गोर्की पृष्ठ 554)

बड़े से बड़े आलोचकों के सन्दर्भ में अपने मत को लिखने से शची जी गुरेज नहीं करती हैं। यह निर्भीकता उनके आलोचना कर्म की सर्व प्रधान विशेषता है। डॉ. नगेंद्र जैसे आलोचकों का विश्लेषण करते हुए वह कहती हैं कि "डॉ. नगेंद्र अभी फ्रायड के मत वादों से मुक्त नहीं हो पाए हैं। प्रगतिवाद के एकाध नादान दोस्त की मोटी अकल में फ्रायड का महत्व नहीं बैठ पाता पर इससे फ्राइड का कुछ नहीं बनता बिगड़ता है।" (वैचारिकी पृष्ठ 12)

तटस्थता शची जी का विशेष गुण रहा है। नई आलोचना शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने आलोचना क्षेत्र में तत्कालीन समय में चल रहे वाद विवादों का विवेचन एवं विश्लेषण करते हुए अपनी समकालीन सजगता को प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ प्रभात शर्मा के डॉ. रामविलास शर्मा पर लगाए हुए आक्षेप (नवयुग 1951) के प्रत्युत्तर में हंस (मई 1951) में लिखे लेख को कोड करती हैं। इन लेखों को उद्धृत करते हुए वह आलोचकीय संयम को केंद्र में रखती हैं और अपना पक्ष प्रस्तुत करती हैं। रांगेय राघव की पुस्तक प्रगतिशील साहित्य के मानदंड के माध्यम से रामविलास शर्मा के संदर्भ में उत्पन्न वाद विवादों को चर्चा परिचर्चा के अंतर्गत ले आती हैं। किन्हीं दो आलोचकों के मध्य चल रहे उत्तर प्रतिउत्तर में निष्पक्ष रुप से अपने मत को वह नई आलोचना के मानदंडों के अनुसार व्यक्त करती हैं। उनके द्वारा लिखा गया लेख उनकी तटस्थ आलोचनात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त करता है। हिंदी के आलोचक में वह आलोचना कर्म के क्षेत्र में गैर जिम्मेदाराना रवैया के प्रति सचेत करती हैं और कुछ ऐसे सवाल उठाती हैं जो निश्चित रूप से पाठक को सोचने के लिए मजबूर करते हैं। पाठक को आगाह करने का कार्य वह निरंतर करती हैं। नई कविता केंद्र और परिधि लेख में वह प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता को तुलनात्मक रूप से देखती ही नहीं है बल्कि नई कविता की केंद्रीय विषय वस्तु और उसकी सीमाओं को भी रेखांकित करती हैं परंतु एक सजग समालोचक की भाँती वह पाठक को आगाह भी करती है कि "प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों में इतना सूक्ष्म भेद है कि पार्थक्य कभी कठिन सा हो जाता है और अनेक प्रगतिवादी रचनाएं प्रयोगवाद के अंतर्गत परिभाषित की जा सकती है।" उदाहरण स्वरूप उन्होंने महेंद्र भटनागर की कविताओं को उद्धृत किया है और बताया है कि ऐसी सैकड़ों कविताएं एक दूसरे में घुसकर बिखरी हुई हैं जिनमें प्रगतिशील उपकरणों और युग विशेष के विशिष्ट अभियानों के अलावा छंद, भाषा शैली और अभिव्यंजना के माध्यम से नवीन प्रयोग किए गए हैं।

इतने उत्कृष्ट लेखन के बावजूद शची रानी इतिहास के पन्नों से ओझल हैं। उनके जन्म शताब्दी वर्ष पर वैसी ही चुप्पी व्याप्त है जैसे अन्य स्त्री रचनाकारों के जन्म शताब्दी वर्ष पर है। यह लेख उन्हें स्मरण करते हुए शब्द सुमन अर्पित करता है।

•

पता :3/1–5–ए–25, विश्वनाथपुरी कॉलोनी, नौलपुर
बाशी, पोस्ट शिखपुर, वाराणसी–221003
मो. : 9450141896

ठुमरियों की छलकती भावपूर्ण रसधार–अतीत से फ़िल्मों तक

❑ के.एल. पांडेय
(प्रस्तुति : नीलम कुलश्रेष्ठ)

ठुमरी पर ये आलेख सुप्रसिद्ध शास्त्रीय संगीत विशेषज्ञ श्री के.एल. पांडेय जी के मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल के 'गमक' कार्यक्रम के अंतर्गत पटल पर 'ठुमरी' पर व्याख्यान व इनके ठुमरी पर लिखे आलेख पर शत प्रतिशत आधारित है।

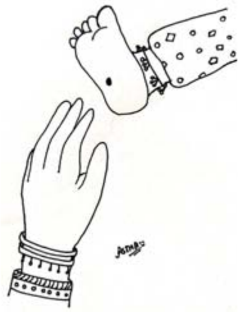

आइए कुछ विशेष फिल्मी गीतों को याद कर लिया जाए—के.एल. सहगल के गाये 'लग गई चोट करेजवा में' और 'बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाये', लता मंगेशकर के गाये 'जा मैं तोसे नाहीं बोलूँ', 'जा जा रे जा बालमवा', 'कदर जाने ना मोरा बालम बेदर्दी', 'मोहे पनघट पे नंदलाल छेड़ गयो रे', 'नदिया किनारे हेराय आई कंगना', मन्ना डे के 'जा रे बेईमान तुझे जान लिया जान लिया', 'आयो कहाँ से घनश्याम', 'फुलगेंदवा न मारो', 'हटो काहे को झूठी बनाओ बतियाँ', परवीन सुल्ताना का 'कौन गली गयो श्याम' वाणी जयराम का 'मोरा साजन सौतन घर जाए' से लेकर श्रेया घोषाल का 'चले आयो सैंयां' और श्रेया घोषाल व पं. बिरजू महाराज का गाया 'बाजीराव मस्तानी' का गीत 'मोहे रंग दो लाल' ऐसे और भी न जाने कितने फिल्मी गीत हमें बाकी गीतों से अलग लगते हैं क्योंकि ये गीत एक विशेष गायन विधा 'ठुमरी' पर आधारित हैं। इनके अलावा और भी गायक ठुमरी पर आधारित फिल्मी गीत गाते रहे हैं जैसे– राजकुमारी, शमशाद बेगम, आशा भोंसले, संध्या मुखर्जी, आरती अंकलिकर आदि ऐसे गीतों का पूरा आनन्द लेने के लिए हमें 'ठुमरी' को भली भाँति समझना अत्यन्त आवश्यक है।

यदि देखा जाए तो उपशास्त्रीय विधाओं में ठुमरी जनसाधारण में सबसे लोकप्रिय गायन विधा है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि रागानुगामी गायन की चार विधाएं हैं—ध्रुपद, ख्याल, टप्पा और ठुमरी। पहले दो शुद्ध शास्त्रीय हैं व बाद के दो उपशास्त्रीय। ठुमरी का नाम सुनते ही लोगों के मन में झुरझुरी होने लगती है कि यह कोई कठिन शास्त्रीय गायन तो नहीं है, लेकिन ऐसा नहीं है। अक्सर कुछ फिल्मी गीत लोगों को बहुत पसंद होते हैं बिना यह जाने कि वह ठुमरी पर आधारित होते हैं। ठुमरियों का प्रयोग

कलात्मक, ऐतिहासिक फिल्मों में नृत्यों, मुजरों तथा पार्श्व संगीत के रूप में हुआ है। दर्शकों की बदलती अभिरुचि के कारण आजकल यह उपयोग कम हो गया है।

ठुमरी भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक गायन शैली है। ठुमरी की कुछ विशेषता यह है कि यह बहुत सहज है और इस पर नृत्य व भावाभिनय भी किया जा सकता है। इसमें सौंदर्यसिक्त एवं रसमय आरोह–अवरोह होते हैं, जो मन को आनंदित करते हैं। इनमें सामान्यतः दस–बारह, चपल धुन प्रधान शास्त्रीय रागों अथवा सरल गेय रागों का ही प्रयोग होता है जैसे– भैरवी, खमाज, पहाड़ी, काफी, पीलू, गारा, देस, तिलक, कामोद, तिलंग, शिवरंजनी। ठुमरी में ताल की बात की जाये तो इसमें छोटे आवर्त्तन की तालों का प्रयोग करते हैं जैसे कहरवा, दादरा, दीपचंदी, व जत। प्रायः विलम्बित लय तथा बाद में द्रुत कहरवा लग्गी प्रयोग की जाती है। ठुमरी के माध्यम से अनेक तरह के भाव या रस प्रकट किये जाते हैं जिनमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती है, इसमें राग की शुद्धता के स्थान पर भाव सौंदर्य को अधिक महत्व दिया जाता है, इसलिए इसे उपशास्त्रीय गायन के अंतर्गत रखा जाता है।

आइए पहले ठुमरी का इतिहास जान लिया जाये। संगीतशास्त्री ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार इसका इतिहास 200 वर्ष के लगभग पुराना है। ठुमरी अर्थात ठुमक–ठुमक + री = ठुमरी (सखी को सम्बोधन) अर्थात वह गायन जो सखी को सम्बोधित करते हुए ठुमक–ठुमक कर किया जाये। यह सदैव भाव और रस से भरी हुई होती है, शास्त्रीय संगीत की कठिन वर्जनाओं से मुक्त एवं जन साधारण से जुड़ी हुई। मूल रूप से यह अभिनय व नृत्य से जुड़ी हुई थी और लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह से पहले भी तवायफें महफिलों में ठुमरी गातीं थीं। वे स्वयं एक अच्छे नर्तक व गायक थे। उन्होंने अख्तर पिया के नाम से ठुमरियां लिखीं थीं। नवाब साहब ने ही नृत्य के साथ ठुमरी की प्रस्तुति आरम्भ की थी। यह अलग–अलग यानी लखनवी अंदाज की ठुमरी, बोल बाँट की ठुमरी, खड़ी ठुमरी, पछाहीं ठुमरी आदि नामों से भी जानी जाती थी।

जब अंग्रेजों ने वाजिद अलीशाह को कोलकाता भेज दिया तो पंडित बिंदादीन महाराज व ग्वालियर के गणपत राव के प्रयासों से बनारस, मिर्जापुर, पटना से ले कर कोलकाता तक यह मशहूर हो गई। लेकिन इस यात्रा में मूल ब्रज भाषा एवं अवधी के साथ भोजपुरी एवं अन्य भाषाओं के शब्द भी जुड़ गए और एक नई शैली का उद्भव हुआ जो बैठ कर गाई जाती थी। इसे बनारसी ठुमरी, पूरबी ठुमरी या बोल बनाव की ठुमरी कहा गया। समय के साथ इसमें कजरी, चौती, चौमासा, बारहमासा, सावन, झूला आदि लोक शैलियों के शब्दों और शैलियों का भी समावेश होता चला गया। बाद में पूरब अंग की ठुमरी के एक हल्के संस्करण ने भी जन्म लिया जिसे दादरा कहा गया। यह ठुमरी से अधिक मुक्त द्रुत एवं उन्मुक्त रूप में सामने आया। इसका उपयोग कथक के साथ भरपूर तरीक़े से किया गया, जो कि आज भी हो रहा है और मध्यकालीन नृत्य परम्परा के अंगहार, रेचक, पिंडी को समाप्त कर कत्थक में सुर, ताल, लय, बंदिशों, तराने, ख्याल, ठुमरी, गजल आदि के समावेश से इस नृत्य शैली में अनेक मनोहारी प्रयोग हुए जो आज तक जारी हैं स साथ ही दोहों, श्लोकों, शेरों, गजलों के ठुमरी में प्रयोग के साथ कथक नृत्य में चार चाँद लग जाते हैं।

ठुमरी, कैशिकी (सजीली) प्रवृत्ति की उपशास्त्रीय भाव प्रधान गायकी है। अक्सर इसे श्रंगारिक या भक्तिरस में सराबोर कर प्रस्तुत किया जाता है। आलाप में सारंगी का प्रयोग रहता है तथा प्रारम्भ में तबले की धीमी लय तथा मुखड़े से ही विभिन्न अलंकारों जैसे खटका, मुर्की, आह, पुकार एवं काकु के प्रयोग से कलापक्ष में निखार आता है।

शास्त्रीय दिखने वाला गीत ठुमरी या ठुमरी शैली से प्रभावित है, यह पहचान पाना भी बहुत कठिन नहीं है, बस उसे ब्रज या अवधी भाषा या उससे प्रभावित होना चाहिए, शृंगारिक होना चाहिए अदाकारी में नाज, नख़रा, क्रोध, क्षोभ, उलाहना रूठने–मनाने एवं शिकायत के भाव होने चाहिए, बोलों को अथवा पूरी–पूरी पंक्ति को बार–बार अलग–अलग रूप में दोहराते हुए प्रस्तुति होनी चाहिए और बहुत अधिक शास्त्रीय नहीं होनी चाहिए तो ऐसी रचना ठुमरी या ठुमरी शैली से प्रभावित ही होगी। गीतों की पृष्ठभूमि अधिकतर, भगवान कृष्ण और गोपियों के प्रेम प्रसंगों, होली की अठखेलियों अथवा नायक नायिकाओं के मिलन तथा वियोग पक्ष की सूक्ष्म संवेदनाओं से परिपूर्ण होने के कारण अत्यन्त मनभावन लगती है।

वैसे तो ठुमरियाँ अनेक प्रतिष्ठित कलाकारों द्वारा पिछले 200 वर्षों से गायी जाती रही हैं लेकिन हमारे शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गायक एवं गायिकाओं ने कुछ ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनकी उत्कृष्टता उन्हें उनके नाम से ही सम्बद्ध कर देती है। हम इतिहास में छिपे बहुत से कलाकारों की प्रस्तुतियों को सुन पाने से अवश्य वंचित रह गए, लेकिन

1902 से रेकोर्डिंग प्रारम्भ हो जाने के कारण, बहुत से कलाकारों की प्रस्तुतियों को रिकॉर्डेड रूप में अथवा प्रत्यक्ष कार्यक्रमों में सुनने का हमें अवश्य अवसर मिलता रहता है। इनमें सबसे पुरानी रेकॉर्ड की हुई ठुमरियाँ गौहर जान, मलका जान की मिलती हैं जो 1902 और उसके बाद रेकॉर्ड हुई हैं। इनमें सबसे पुरानी ठुमरी गौहर जान की है–'रस के भरे तोरे नैन' है। बाद में महबूब जान शोलापुर, जानकीबाई इलाहाबाद, जोहराबाई आगरा, उस्ताद अब्दुल करीम खाँ, हीराबाई बड़ोदकर, केसरबाई केरकर, बड़ी मोती बाई, सिद्धेश्वरी देवी, रसूलन बाई, काशी बाई, जद्दन बाई, इन्दुबाला, अंगूरबाला, की गाई ठुमरियों के भी रेकॉर्ड बने हैं।

इसके बाद की गायिकाओं में बेगम अख़्तर, गिरिजा देवी, निर्मला देवी, लक्ष्मी शंकर, अनीता सेन, किशोरी अमोनकर, शोभा गुर्टू, नैना देवी, सविता देवी, हीरा देवी मिश्रा, मालबिका कानन, छाया गांगुली, कनकना बैनर्जी, पूर्णिमा चौधरी, शुभा मुद्गल, कौशिकी चक्रवर्ती, सोमा घोष, सुचरिता गुप्ता तथा गायक कलाकारों में पं. नारायण राव व्यास, उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, उस्ताद फैयाज खाँ, उस्ताद नजाकत अली–सलामत अली खाँ, मुनव्वर अली खान, पं. ए. टी. कानन, पं. ओंकारनाथ ठाकुर, पं. पशुपतिनाथ मिश्र, पं. छन्नूलाल मिश्र, पं. अजय चक्रवर्ती, पं. बिरजू महाराज, पं. जगदीश प्रसाद तथा पं. वसन्तराव देशपांडे, उस्ताद गुलाम मुस्तफा खाँ एवं उस्ताद राशिद खाँ शामिल हैं।

हिन्दी फिल्मों में प्रारम्भ से ही ठुमरियों का प्रयोग मिलता है। कहानी की दृष्टि से इन्हें शास्त्रीय गायन एवं नृत्य प्रस्तुतियों, संवेदनशील दृश्यों एवं मुजरों में समावेशित किया जाता रहा है। चित्रपट संगीत में कहानी के अनुरूप अनेक ठुमरी के शुद्ध एवं व्यावहारिक रूप और कई ठुमरीनुमा गीत दिखाई देते हैं। कुछ चयनित फिल्मी ठुमरियों एवं उनमें प्रयोग हुए रागों का विवरण निम्न हैं– 1. लग गई चोट करेजवा में–यहूदी की लड़की (1933)–के.एल. सहगल–काफी 2. पिया बिन नहीं आवत चैन–देवदास (1935)–के.एल. सैगल–झिंझोटी 3. बाबुल मोरा नैहर–स्ट्रीट सिंगर 1938 –के.एल. सैगल–भैरवी 4. पा लागूँ कर जोरी रे–आपकी सेवा में 1947–लता मंगेशकर– पीलू 5. चले जइहो बेदरदा–बेकसूर 1950–राजकुमारी– खमाज. यमन कल्याण 6. सौतन घर ना जा–वारिस 1954 –राजकुमारी–खमाज 7. ना जाने ना जाने रे–बिराज बहू 1954–शमशाद बेगम–खमाज 8. जा मैं तो से नाहीं बोलूँ–सौतेला भाई 1962–लता मंगेशकर–अड़ाना + बहार + गारा + मियाँ की मल्हार + काफी + शहाना 9. तोरे नैना लागे–ममता 1966–सन्ध्या मुखर्जी–गौड़ सारंग + मेघ + देस + आभोगी 10. जा जा रे जा बालमवा – बसंत बहार – 1956 – लता मंगेशकर – खमाज + रागेश्री + काफी 11. जा रे बेईमान तुझे जान लिया – प्राइवेट सेक्रेटेरी 1962 – मन्ना डे – बागेश्री 12. छोटा सा बालमा 1958 – लता मंगेशकर – पहाड़ी + तिलंग + माँझ खमाज 13. आयो कहाँ से घनश्याम – बुड्ढा मिल गया 1971 – मन्ना डे – खमाज 14. कौन गली गयो श्याम – पाकीजा 1971 – परवीन सुल्ताना – पहाड़ी 15. मोरा साजन सौतन घर जाए – पाकीजा 1971 – वाणी जयराम – पहाड़ी + मारू बिहाग 16. नजरिया की मारी – पाकीजा 1971 – राजकुमारी – मारू बिहाग + पहाड़ी + खमाज 17. घर नहीं हमरे श्याम – सरदारी बेगम 1997 – आरती अंकलिकर – नंद 18. घिर घिर आई बदरिया कारी – सरदारी बेगम 1997 – आरती अंकलिकर – नन्द 19. मोरे कान्हा जो आए पलट के – सरदारी बेगम 1997 – आरती अंकलिकर/आशा भोंसले – पीलू 20. कदर जाने ना मोरा बालम – भाई भाई 1956 – लता मंगेशकर – भैरवी 21. नदिया किनारे हेराय आई कंगना – अभिमान 1973 – लता मंगेशकर – पीलू 22. मोहे पनघट पे नंदलाल – मुगल ए आजम 1960 – लता मंगेशकर – गारा 23. चले आओ सैयाँ – खोया खोया चाँद 2007 – श्रेया घोषाल – पीलू + गारा + खमाज 24. बावरा मन देखने चला – हजारों ख़्वाहिशें ऐसी 2005 – शुभा मुद्गल – छायानट 25. मोहे रंग दो लाल – बाजीराव मस्तानी 2015 – श्रेया घोषाल एवं पं. बिरजू महाराज – पूरिया धनाश्री. पूरिया कल्याण. काफी. यमन।

आजकल जो शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम होते हैं उनमें अंत में रस परिवर्तन के लिए ठुमरी का प्रयोग किया जाता है। हमें कुछ पुरानी कला प्रधान सामाजिक एवं ऐतिहासिक फिल्मों में अक्सर इनका प्रयोग मुजरों या पृष्ठभूमि में देखने को मिलता था अब तो केवल नाममात्र की बाजीराव मस्तानी जैसी फिल्मों में इनका प्रयोग मिलता हैस आशा है आगे हमें कलात्मक, संगीत एवं नृत्य प्रधान तथा ऐतिहासिक फिल्मों में कुछ नई ठुमरियों के प्रयोग अवश्य देखने को मिलेंगे।

•

प्रस्तुति : नीलम कुलश्रेष्ठ
पता : सी–6–151, ऑर्किड हारमनी, एपलवुड्स
टाउनशिप, एस.पी. रिंग रोड, शेला
अहमदाबाद–380058
मो. : 9925534694

नीलोत्पल रमेश की कविताएँ

नीलोत्पल रमेश

कितना कठिन है

कितना कठिन है
दोनों समय रोटी का इंतज़ाम
और कुछ समय निकाल
आपस में सुख–दुःख बांटना
और थोड़ी देर के लिए
अपने को चिंतामुक्त समझना

आज
कठिनाई में और कठिनाई
दुःख में और दुःख
फिर भी लोग
भंवर में फंसे
देखना चाहते हैं दूसरों को

कितना कठिन है
सगीर रहमानी, शीन हयात के साथ
उठना–बैठना, घूमना–फिरना
और मुट्ठीभर समय निकाल
चोंच में चोंच मिलाना

समय की सुई
कब किस पर
घूम जाएगी
नीचा दिखाने के लिए
और अपनी कारगुज़ारी
छुपाने के लिए
कहा नहीं जा सकता

कितना कठिन है
बर्फ बन चुके हृदय को पिलाना
और उसमें कविता के लिए
संवेदना उत्पन्न करना

सब कुछ कठिन है
कठिन नहीं है तो सिर्फ
अनैतिक कार्यों को करना।

डरा हुआ आदमी

डरा हुआ आदमी
अपने सहकर्मियों को
अक्सर धमकाता रहता है
और अपने कार्य स्थल पर
असफल हुए कार्यों को
सफलता में बदल कर
डींगें हांकता रहता है

डरा हुआ आदमी
भूत–वर्तमान–भविष्य में
अपनी सफलता–असफलता से
सशंकित रहता है
और अपने को
कमजोर महसूस करने लगता है

डरा हुआ आदमी
कभी किसी पर
विश्वास नहीं करता
यही कारण है

कि वह किसी के कामों में
अंगुली करते रहता है

डरा हुआ आदमी
अपने मातहतों में
शेखी बघारता है
और ख़्याली पुलाव
पकाते हुए
अपने को श्रेष्ठ
घोषित करने की
कोशिश करता है
भले ही वह
तुच्छ क्यों न रहा हो!

डरा हुआ आदमी
अंदर से भयभीत रहता है
और हमेशा
शंकालु प्रवृत्ति का
होते जाता है
क्योंकि वह
डरा हुआ आदमी है।

सराय

सराय
यानी थोड़ी देर के लिए ठहराव
यह ठहराव है
जीवन को पाना
और विविध गतिविधियां
करते हुए
अंततः जीवन को
खो देना

सराय मुगल काल में
राजाओं—महाराजाओं द्वारा निर्मित
वह भवन है
जिसमें यात्रा के दौरान
रात—बिरात होने पर
या प्राकृतिक आपदा के समय
खुले आकाश में रहना
संभव न हो सके
वैसी स्थिति में
यात्री अपना ठौर—ठिकाना
बना सके

जीवन की बगिया में
इस तन को पाना
सराय ही है
जो एक समय के बाद
त्यागकर
पुनः नए सफर में निकल पड़ता है
और एक बार फिर
एक सराय की तलाश में
लगा हुआ आदमी
जीवन को खपा देता है

सराय
जीवन की आपा—धापी में
थोड़ा सुकून
थोड़ी राहत
थोड़ा आत्मविश्वास
थोड़ी नई ऊर्जा
भरने का कार्य
वर्षों से करते आया है
और अब भी
वह अपनी भूमिका
निभाना चाहता है
पूर्व की भांति।

•

पता : पुराना शिव मंदिर, बुद्ध बाज़ार गिद्दी—1,
जिला—हजारीबाग, झारखण्ड—829108
मो. : 09931117537

अशोक अंजुम के पाँच गीत

अशोक अंजुम

मेरे गीत

मेरे गीतों का, गज़लों का,
कोई मोल भला क्या देगा!

मानपत्र मेरी सांसों के
शब्द–शब्द दिल की धड़कन हैं,
मेरी रचनाएं मत पूछो
भावों का गंधित मधुबन हैं,
इन्हें तुला पर धन–दौलत की
कोई तोल भला क्या देगा!

जब–जब बोझिल हुई ज़िन्दगी
गीतों–गज़लों ने दुलराया,
जब–जब गिरा ठोकरें खाकर
दिया सहारा, मुझे उठाया,
जो रस घोला है जीवन में–
कोई घोल भला क्या देगा!

जहां पहुंचना बहुत कठिन था
ये ले पहुंची मुझे वहां तक,
मेरा नाम लिये फिरती हैं
ये रचनाएं कहां कहां तक,
बंद द्वार खोले हैं जो–जो–
कोई खोल भला क्या देगा!

बहुत समय हो गया

बहुत समय हो गया
दोस्तो
मिलना नहीं हुआ!

पीछे छूट रहे हैं
पल–पल
भागदौड़ में दिन,
जीवन सरल बने,
चाहत थी–
होता गया कठिन,
थके ठहाके,
कब से खुलकर–
हंसना नहीं हुआ!

भौतिक सुविधाओं ने
हम सब
ऐसे भरमाए,
आगे पांव बढ़ाकर
पीछे
लौट नहीं पाए,

ऐसी भागम भाग मची,
फिर हमसे –
रुकना नहीं हुआ!

समय से माफी

झूठ–साँच के झगड़े में
हम बने तमाशाई,
अगर कर सके समय
हमें तू माफ कर देना!

सच्चाई ने की गुहार
हम बहरे बने रहे,
अपने मन पर आशंका के
पहरे बने रहे,
आँखों के रहते हमको
कुछ दिया न दिखलाई!
अगर कर सके समय
हमें तू माफ कर देना!

औरों के झंझट से हमको
क्या लेना–देना,
उथली नदिया, नाव स्वयं की
बस उसमें खेना,
हमें डराती रही उम्र–भर
अपनी परछाई!
अगर कर सके समय
हमें तू माफ कर देना!

ये छोड़िए!

कुछ किया,
कुछ हो गया,
कैसे हुआ ये छोड़िए!

हस्त रेखाओं ने कैसे
भूमिका अपनी निभाईं–
क्या पता, हमने हमेशा
स्वेद से फसलें उगाईं,

आप तो
जो फल लगे हैं
सिर्फ उनको जोड़िए!
कुछ किया,
कुछ हो गया,
कैसे हुआ ये छोड़िए!

ये न पूछो किस तरह से
दीप आँधी में जलाए,
ये न पूछो किस तरह
तूफान से पंजे लड़ाए,
हौसले रफ्तार पर हैं
पंख तो मत तोड़िए!
कुछ किया,
कुछ हो गया,
कैसे हुआ ये छोड़िए!

खाली हो कर आए हैं!

अभी अभी तो कुल्लू और
मनाली होकर आए हैं,
अम्मा थोड़ा सब्र करो
हम खाली हो कर आए हैं!

तुमको होश नहीं रहता कुछ
इधर–उधर धरती हो मां,
कितने चश्मे तोड़ चुकी हो
तुम भी हद करती हो मां,

तुम तो दुनिया देख चुकीं
कुछ हमको भी जी लेने दो,
कुछ घाटों का पानी अम्मा
हमको भी पी लेने दो,

हम दरख़्त से कट पिट कर
इक डाली होकर आए हैं!
अम्मा थोड़ा सब्र करो
हम खाली हो कर आए हैं!

तुम्हें मोतियाबिंद, तुम्हारे–
घुटने भी कमजोर हुए,
ब्लड प्रेशर है, तुम्हें शुगर है
हम सुन–सुनकर बोर हुए,

अम्मा घर का खर्च चलाना
कठिन हुआ महंगाई में,
पूरा वेतन उड़ जाता है
राशन और पढ़ाई में,

हम अम्मा ख़ुद, ख़ुद की ख़ातिर
गाली होकर आए हैं!
अम्मा थोड़ा सब्र करो,
हम खाली हो कर आए हैं!

अम्मा बोली – चश्मा छोड़ो
जीवन सुखद बनाओ तुम,
रहे खिलखिलाहट जीवन में
खूब मनाली जाओ तुम,

सबको उतना ही मिलता
जो ऊपर वाला लिखता है,
बिन चश्मे के बेटा तेरा
चेहरा धुँधला दिखता है,

अपने नाजुक कन्धों पर तुम
कितने बोझ उठाए हो,
पता नहीं था बेटा बिल्कुल
खाली होकर आये हो !

•

पता : स्ट्रीट–2 , चन्द्र विहार कॉलोनी
(नगला डालचंद) क्वार्सी बायपास, अलीगढ़–202001
मो. : 9258779744

विजयलक्ष्मी विभा की तीन कविताएँ

विजयलक्ष्मी विभा

चिटका दर्पण

मेरा मन चिटका दर्पण।
दिखतीं इसमें मुझको अपनी,
कोटि–कोटि छायाएँ,
जितने टुकड़े उतने मुखड़े,
उतनी ही कायाएँ,
हर छाया पर हो जाती मैं,
बेसुध हो अर्पण।
कोई रूप लुभाता मुझको,
वैभव से अति प्यारे,
कोई मुझे रिझाता अपने,
साधु वेश से न्यारे,
सबके सब प्रतिद्वन्दी जैसे,
दिखते हैं क्षण–क्षण।
कोई हँसता आता सम्मुख,
कोई दिखता रोता,
क्यों ऐसा होता जो दर्पण,
स्वयं न चिटका होता,
सुख–दुख क्यों न व्याधि बन आयें,
दर्पण में ही ब्रण।
दर्पण की ये अमिट दरारें,
बनी अमिट इच्छाएँ,
धुँधले रूप दिखाते मुझको,
धुंधली सी आशाएँ,
टुकड़ों के भी होते टुकड़े,
होते जब घर्षण।

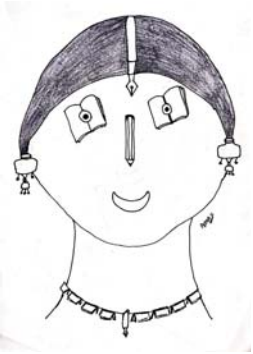

क्या श्रृंगार करूं जीवन का,
दर्पण ही जब फूटा,
किसमें देखूं क्या–क्या पहना,
क्या क्या भूषण छूटा,
टूटे दर्पण से जीवन में,
बिम्बित सदा मरण।

मृदु थपकी

जब–जब रोया मन शिशु मैंने,
दी प्रलोभनों की मृदु थपकी।
क्यों रोता रे पागल, जग में
कितने तेरे देख खिलौने,
सूरज चांद सितारे फैले,
गिरि गह्वर वन कोने–कोने,
भाया तुझे न कोई तेरी,
आँखें नित अदृष्ट पर लपकी।
चाहे जिसको तोड़ फोड़ रे,
चाहे जिसमें खेल अनाड़ी,
चाहे जहां पहुंच जा चढ़ कर,
पवन वेग की तेरी गाड़ी,
किन्तु दृगों से तेरे अविरत,
जब देखा तब बूंटें टपकीं।
कभी उसे फुसलाया कह कर,
चपल भाग्य को मैं डांटूंगी,
छेड़ेगा जो फिर वह तुझको,
उसके दोनों पर काटूंगी,
व्यर्थ हुईं पर सभी लोरियाँ,
क्षण को उसे न आई झपकी।
सारे खेल खिलाये मैंने,
जीवन भर मन को दुलराया,
प्रौढ़ हुआ तो उसे ग्यान की,
बातों से निशदिन समझाया,
बना मुझे ही स्वयं खिलौना,
खेला, जब की बातें तप की।
मैं ही हारी चंचल मन से,
उसे न वसीभूत कर पाई,
उसके ही आँचल में शिशुवत,
सोई जागी ले अँगड़ाई,
हुये प्रलोभन सारे निष्क्रिय,
मन के सँग मैं रोई फफकी।

अपना कोई नहीं बहाना

रोज रात का आना जाना,
रोज सबेरे का इठलाना,
लगता है ये दोनों ही हैं,
इस जीवन का ताना–बाना।
एक पूर्व से पश्चिम तक है,
और एक उत्तर से दक्षिण,
सभी बंधे हैं इन धागों से,
नहीं कोई इनसे है उऋण,
सांस– सांस से गूंजा करता,
इनका राग इन्हीं का गाना।
इन तानों बानों में होती,
रोज–रोज कुछ खींचा तानी,
नहीं दिशाएँ थकतीं करते,
इनके सँग अपनी मनमानी,
जीर्ण शीर्ण से होते खिंचकर,
भरते हम रोकर हरजाना।
इनके सँग है जीना मरना,
इनके संग सुख–दुख की परिणति,
इनकी टिक–टिक पर है दुनिया,
इनकी टिक पर है जीवन गति,
इनके आगे चलता जग में,
अपना कोई नहीं बहाना।

•

पता : साहित्य सदन, 149 जी/2,
चकिया, प्रयागराज–211016
मो. : 7355648767

स्नेह मधुर की पाँच कविताएँ

स्नेह मधुर

"ढाल"

मैं
उन पराक्रमी पुरुषों में
नहीं हूं कि जिन्हें
मैं न चाहूं तो
उनकी राख भी
नहीं मिल सकती
इस पृथ्वी पर।

न ही मैं
उन खुशनसीब
लोगों में हूं कि जो
किसी को चाहें
तो वे वसंत की तरह
समा जाते हों
उनके रोम रोम में।

मेरे चारों तरफ फैला है
असमंजस का अंधेरा
और मेरी बाहाँ पर है
संपोलों का डेरा
जिन्हें देखकर लोग
हो जाते हैं भयभीत।

लोग जानते हैं कि
फैल चुका है विष मेरी रगों में
जो कर सकता है मृतप्राय
उन्हें भी।

लोग जानते हैं
मैंने अपनी नज़रों से नहीं किया
किसी का शिकार
और न ही मेरी फुफकार से
हुआ है कोई आहत
लेकिन फिर भी
मेरे ऊपर होती रहती है
बाणों की बौछार।

वे
कर देना चाहते हैं
मुझे खत्म
मेरे भीतर के जहर को नहीं
यह जहर ही तो है
उनकी अभिलाषा।

यह विष
जो था मेरे लिए एक ढाल
उनके लिए बन गया है
एक शस्त्र !

कुछ तो बोलो

सच बोलो
झूठ बोलो
कुछ भी बोलो
दिल तो खोलो जी।

इधर देखो
उधर देखो
किधर भी देखो
आंखें तो खोलो जी।

इनको भूलो
उनको भूलो
सबको भूलो
यादों में तो लाओ जी।

एक बार दो
दो बार लो
कितना भी लो
गुनना तो सीखो जी।

अकड़ा करो
नखड़ा करो
झगड़ा करो
बिगड़ा तो करो जी।
ताका करो
झांका करो
भागा करो
दूरी तो लांघो जी।

छोड़ा करो
जोड़ा करो
तोड़ा करो
पकड़ो तो सही जी।

मेरा आसमान

स्नेह मधुर
पहाड़ पर चढ़ रहे व्यक्ति के पास
ऊंचाई पर पहुंचने से
ठीक पहले
रह जाती हैं
बस कुछ ही सांसें
कुछ गिनी हुई सांसें
और गिने हुए कदम।

और फिर शुरू होती है जंग
वैसी ही जैसे
स्लॉग ओवर में
बची हुई कम गेंदों पर
अधिक रन बनाने की
गेंद कम
दरकार ज्यादा रनों की
थमने लगती हैं सांसें
लक्ष्य लगने लगता है बहुत दूर
और अचानक
बल्ले से निकले चौके छक्के
उस असंभव दूरी को
देते हैं ढकेल पीछे
लक्ष्य होता है पैरों के नीचे और
फिर भी बची रह जाती हैं
कुछ सांसें।

लेकिन क्रिकेट जैसी उत्तेजना
और संभावनाएं अविजित लक्ष्य को
हासिल कर सकने की
नहीं होती जिंदगी में
खासकर चढ़ते समय पहाड़
जब लक्ष्य होता है पास
लेकिन सांसें होती हैं
उससे भी कम
तब
उन कीमती सांसों को
बचाए रखने के लिए
छोड़नी पड़ती हैं
सांसों से भी अधिक कीमती चीजें।

पहाड़ की चढ़ाई पर
नहीं काम आते कीमती उपकरण
या अंतरंग रिश्ते
लक्ष्य हासिल करने में
बोझ बन रहे रिश्तों की
देनी पड़ती है बलि
वरना लग जाता है
असफलता का दाग
जो नहीं छूट पाता
किसी भी डिटर्जेंट से।

सांसों को
बचाए रखने के लिए
छोड़नी पड़ती है उन लम्हों पर से
अपनी गिरफ्त
और देखना पड़ता है उन्हें
अपने से दूर जाते हुए
जिन्हें बचाने के लिए
साथ संजोए रखने के लिए
मैंने किए थे
ढेर सारे वायदे खुद से
अब जब मुझे चढ़ना ही है पहाड़
पहुंचना है समिट तक
तो तोड़ना पड़ेगा उन कसमों को
बनना पड़ेगा निष्ठुर
क्योंकि
मैंने खुद से भी किया था एक वायदा
शिखर पर
अपने पद चिन्ह बनाने का।

है मुश्किल
अर्जुन बनना
जो नहीं हो पाते पाशमुक्त
वे नहीं बन पाते
अनुकरणीय।

मैं पहला व्यक्ति नहीं होऊंगा
एवरेस्ट पर फतह हासिल करने वाला
लेकिन हो सकता हूं वह पहला आरोही
जो सैकड़ों की भीड़ में से
आगे निकलते हुए
कुछ पहले
एवरेस्ट पर पहुंच जाने वालों में।

तेनजिंग ने सातवीं बार में
हासिल किया था लक्ष्य
मैं
तीसरी, चौथी बार में ऐसा करके

आ सकता हूं दुनिया भर की नजर में
बस इसके लिए मुझे
बचाए रखनी होंगी
कुछ सांसें
अपने लिए।

मैं नहीं चाहता रौंदना पहाड़ को
बस चाहता हूं नापना
अपने पैरों से पहाड़ को
मेरे पैरों के नीचे की भी जमीन
है उतनी ही पूज्य
जितना आंखों से दिखता आसमान।

जैसे मैं चाहता हूं
अपनी आंखों से
नीले आसमान को
अपने भीतर उतार लेना
उसी तरह चाहता हूं
इन श्वेत ऊंचाइयों को
समाहित कर लेना
अपनी रगों में।

आंखों से दिखने लगा है शिखर
पुकारने लगी हैं दिशाएं
लक्ष्य की है यह मांग
बचाना ही होगा इन सांसों को
पहाड़ों की इन ऊंचाइयों पर
चढ़ करके ही
आ सकता है मेरी बाहों में
मेरा आसमान!!!

निश्चित आकार

मन के उमड़ते ही
घुमड़ते बादलों के बीच से
अचानक
लगती हैं टपकने
फिर बरसने
उनकी मदहोशियां
और फिर भिगोकर ये लफ्ज
हो जाते हैं
विलीन
सब कुछ उड़ेलकर।
भविष्य में
जब कोई
बांचेगा उन्हें
तो निकालेगा अपने अर्थ
नहीं पहुंच पाएगा
उन बादलों तक
नहीं ढूंढ पाएगा
बादलों को पिघला देने वाली
उस नितांत निजी
ऊष्मा को।
सबकुछ अनकहा
अनसुना
बस
सागर मंथन
और कुछ नहीं
कुछ भी नहीं!!!

•

पता : ए11, पत्रकार कॉलोनी, अशोक
नगर, प्रयागराज–211001
मो. : 9415216045

रंजना खरबंदा की कविता

रंजना खरबंदा

हर शख्स राज़दार नहीं होता,
हमसफर तो है पर साथ नहीं होता।
तू है मेरे साथ,तो गम का अंदाज़ नहीं होता,
तूने रहमत कब बरसा दी, यह अहसास नहीं होता।।

उलझे हुए ख़यालों को सुलझाने का कयास,
ज़िंदगी की उलझनों को, सुलझाने का कयास।
वक्त थम–सा जाए,दिल को समझाने का कयास,
कयासों के सफर को तय करने का कयास।।

फ़िक्र के काफिले के हम, मुसाफिर हरगिज़ न थे,
कब काफिला साथ हो लिया, यह इल्म न हुआ।
ढूंढते रहे काफिले में, खुशी के मुसाफिर को,
वक्त का परिंदा ना जाने उन्हें कहां ले उड़ा।।

खुद की खुद से हो, मुलाकात बहुत ज़रूरी है।
हो जाए गर थोड़ी, बात बहुत ज़रूरी है।
गैरों से तो होती है बातें रोज़,
अपनो से हो जाये गर, पहचान बहुत ज़रूरी है।।

•

पता : अशोक नगर, निकट सी.वी. टावर,
डमन रोड, प्रयागराज–211001
मो. : 7379393444

ए.के. अस्थाना की दो कविताएँ

अन्तर्मन में

घने बादलों में छिप रहे हो तुम
तुम्हारी वो उलझी अलकें
जिन्हें मैं सुलझा रहा हूं
घटाओं से घिरे रहे सपने
हां सपने तो सपने हैं
क्योंकि सपनों से ही बनता है, व्यक्तित्व
जीवन की जिजीविषा
का वो क्षण
किस उधेड़ बुन में जिये जा रहा हूँ
उम्र के कई दलीचे
पार कर रहा हूँ
न जाने क्यूं तुम
फिर भी रूई के फाए सी दिखाई देती हो तुम
मैं अपने भीतर
की पारदर्शिता में देख रहा हूँ तुम्हें

टटोल रहा हूं तुम्हें
तुम आज भी बिल्कुल
वैसे ही जिन्दा हो मेरे अन्तर्मन में
बिल्कुल वैसे ही....

प्रतिबिम्ब

नयी शाखाओं के बीच उगते
सूर्य की आभा से
तुम्हारी आशाओं के घेरे
मैं और तुम
घने केशों की परिलिप्त
प्रेम की शाखाएं
निरन्तर आगोश में लेती
हां प्रात की पुचकारियों के साथ
जहां घेर लेती हैं सुबह की किरणें
हां सच है कि मैं वहीं फिर भी
देख रहा झील के जल में प्रतिबिम्ब
नयनों के गोलाकर
तैर रही हैं
जब व्योम में टंक जाते हैं बेल बूटे
और बिछ जाती है तुम्हारी स्मृतियों
धीरे–2 छँट रही हैं
हथेलियों में लिखी वो बातें
धीरे–धीरे–धीरे....

•

पता : प्लाट नं.–17, गोपाल नगर, कानपुर
मो. : 9305235587

वर्तमान बेरोजगारी का नया कलेवर और 'अन्वेषण' उपन्यास की प्रासंगिकता

❑ डॉ. पूजा मदान

"एक बात बताओ, हमारे जो इतने साल बर्बाद हुए, उसे कौन वापस करेगा? इन वर्षों में हमने जिंदगी नहीं जाना। हमने नहीं जाना कि सुख क्या होता है? हमने नहीं जाना सुकून क्या है। उस समय को फिर से कोई वापस देगा? वे दिन जब हम अपने आदमी होने को सबसे ज्यादा शिद्दत से महसूस कर सकते थे। लोगों के सामने उसे सिद्ध कर सकते थे– वे बेमतलब के बीत गए। वह वक्त हमें फिर मिल सकता है? यदि ब्रह्मा या यमराज जो भी हों, –कहे हमारी उम्र दस वर्ष बढ़ गयी तो भी बात बन नहीं सकती। हमारे खराब हुए यौवन के वर्ष हैं, दान दिए वर्ष तब के होंगे जब कोई मृत्यु का इंतजार करता है, जिंदगी का नहीं।"

'अन्वेषण' उपन्यास में कही यह बात आज के प्रत्येक युवा मन के भीतर लगातार कौंध रही है। चाहे वह तीस की उम्र पार कर चुका कोई युवक हो या अट्ठाइस की दहलीज पर खड़ी अपने सौन्दर्य को पीछे छोड़ती एक लड़की। गाँव की पगडंडियों को पार कर पक्की सड़क पर चलने का जो अदम्य साहस इस वर्ग ने दिखाया है तथा अपने पुरखों द्वारा किये संघर्ष को सम्मान में परिवर्तित करने का जो संकल्प इन्होंने लिया है क्या वह सब देखते ही देखते धराशायी हो जायेगा? क्या पितृसत्तात्मकता को चुनौती देकर उच्च शिक्षा संस्थानों तक पहुंची लड़कियां घर की देहरी में फिर से कैद हो जाएंगी? दिन–रात प्रतिरोध को उकेरती उनकी धारदार कलम वक्त की मार से अवरुद्ध हो जाएगी? क्या उनके सुनहरे सपने किसी भयंकर दिवास्वप्न में तब्दील होकर रह जाएंगे? इस तरह के हजारों प्रश्न है जिनसे आज का युवा वर्ग निरंतर जूझ रहा है। लगातार बढ़ रही बेरोजगारी की दर और आए दिन सरकार द्वारा निजीकरण को महत्त्व देना साफ–साफ बतला रहा है कि वर्तमान युवा वर्ग का भविष्य कहाँ तक सुरक्षित है। बेरोजगारी की यह पीड़ा न सिर्फ युवा वर्ग में आत्मविश्वास की कमी को बढ़ा रही है अपितु पारिवारिक रिश्तों से भी उन्हें कोसों दूर करती जा रही है। रोज खत्म होती मानवीय संवेदनाएँ इस बात की गवाही स्पष्ट रूप से देती प्रतीत हो रही है। युवाओं के नष्ट होते कैरियर को लेकर युवा लेखक गंगासहाय मीणा अपने एक लेख में लिखते हैं– "युवा भारत संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। एक तरफ शिक्षित व प्रशिक्षित युवाओं की संख्या में तेजी से इजाफा हो रहा है, वहीं दूसरी तरफ बेरोजगारी की दर भी बढ़ रही है। हर नया

आंकड़ा बढ़ती बेरोजगारी की दास्तां बयान करता है। एनएसओ की ताजा रिपोर्ट बता रही है कि जनवरी से मार्च 2019 की तिमाही में शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी की दर में इजाफा हुआ है।''

बेरोजगारी की इसी तलख सच्चाई को उजागर करता एक अनूठा उपन्यास है 'अन्वेषण'। तद्भव के संपादक अखिलेश द्वारा सन् 1992 में रचित यह उपन्यास बेहद प्रासंगिक है। उपन्यास आदि से अंत तक भारतीय युवाओं के खत्म होते कैरियर की बात सिरे से उठाता है। जिसकी कथा के केंद्र में एक ऐसा व्यक्ति (नायक) है जो उच्च शिक्षित है किन्तु नौकरी न मिलने के कारण घोर निराशाजनक स्थिति में है। एक तरह से यह व्यक्ति (नायक) समस्त बेरोजगार नवयुवकों का प्रतीक मॉडल भी है। दिन–रात अपनी असफलताओं और निराशाओं से जूझता वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष करते हुए आगे बढ़ता है। उपन्यास का फ्लैप भी नायक की इसी अंतहीन जिजीविषा की ओर संकेत करता है– "सहज मानवीय उर्जा से भरा इसका नायक एक चरित्र नहीं, हमारे समय की आत्मा की मुक्ति की छटपटाहट का प्रतीक है। उसमें खून की वही सुर्खी है, जो रोज–रोज अपमान, निराशा और असफलता के थपेड़ों से काली होने के बावजूद, सतत संघर्षों के महासमर में मुँह चुराकर जड़ता की चुप्पी में प्रवेश नहीं करती, बल्कि अँधेरी दुनिया की भयावह छायाओं में रहते हुए भी उस उजाले का अन्वेषण करती रहती है, जो वर्तमान बर्बर और आत्महीन समाज में लगातार गायब होती जा रही है।"

उपन्यास की शुरुआत ही कथानायक की बढ़ती उम्र और बढ़ती बेरोजगारी के साथ होती है। उम्र के साथ बढ़ती बेरोजगारी न सिर्फ उसे मानसिक रूप से प्रताड़ित करती है अपितु शारीरिक रूप से भी वह खुद को कमजोर महसूस करता है। नायक द्वारा कहा गया यह वाक्य 'मैं जिन्दगी के उन्तीसवें साल में हूँ या मैं मृत्यु के उन्तीसवें साल में हूँ।' हमारे समय का सबसे त्रासदपूर्ण वाक्य है। जीवन में कुछ न कर पाने के कारण उसके मन में निरंतर छटपटाहट होती रहती है। नौकरी के अभाव में वह न तो खुद सुख की अनुभूति कर पाता है और न ही अपने माता–पिता को कोई सुख दे पाता है। वह माँ के लिए रंग–बिरंगी साड़ी नहीं ला सकता और न ही पिता के लिए कोई कीमती घड़ी। इतने वर्षों बाद मिली पूर्व प्रेमिका विनीता को मैंगो जूस तक नहीं पिला सकता। यहाँ तक कि मकान–मालिक का किराया भी समय पर नहीं चुका पाता। एक तरह से वह जीवन के हर क्षेत्र में खुद को असमर्थ महसूस करता है। इस संदर्भ में हरे प्रकाश उपाध्याय लिखते हैं– "कथाकार अखिलेश का पहला उपन्यास अन्वेषण दरअसल भयावह बेरोजगारी और कैरियरवाद के बीच व्यवस्था से जूझते उस संघर्ष और सरोकार की तलाश की कोशिश है, जो कहीं दीप्त तो अपनी आभा के साथ है मगर उसके लापता हो जाने का खतरा सामने पेश है।"

यह हमारे समाज का एक क्रूरतम सच है कि जिसके पास नौकरी है लोगों की नजरें सबसे पहले उसी पर पड़ती है उसी के ठाठ–बाट के सब दीवाने हुए जाते हैं जबकि वहीं एक बेरोजगार व्यक्ति घोर परिश्रम करने के बावजूद भी खुद को उस पायदान पर खड़ा हुआ नहीं पाता। उसका दिमागी विवेक एकदम शून्य हो जाता है परिणामस्वरूप वह खुद को समाज से परे कर लेता है। कुछ ऐसी ही हालत कथा के नेरेटर की भी है। नौकरी न मिलने के कारण गाँव या आस–पास के लोगों की बातें उसे कील की भांति चूभती है। वह समाज की नजरों से बचकर कहीं छिपना या दूर भाग जाना चाहता है। जब भी कोई उससे उसकी नौकरी के बारे में पूछता है तो वह स्वयं को युद्ध में हारे हुए सिपाही की भांति पाता है। जिसके घाव में हो रहे दर्द का अंदाजा लगा पाना बेहद कठिन है। चाय पर दोस्तों के सामने वह खुद पर लोगों द्वारा की जाने वाली मारक टिप्पणी को बताते हुए कहता है– "आजकल क्या कर रहे हो ?" यह सवाल मेरे लिए सबसे ज्यादा हिंसक, क्रूर और दैत्यकर था। जब भी कोई मुझसे पूछता, मैं लहूलुहान और कुचला हुआ हो जाता।"

असफलता के इस पुल पर खड़े हुए कई बार वह आत्महत्या करने की भी सोचता है लेकिन पीछे मुड़ जब वह अपने दोस्तों को देखता तो उसे महसूस होता है कि बेरोजगारी के इस रणक्षेत्र में वह अकेला नहीं है बल्कि उसके दोस्त भी हाथों में ज्ञानरूपी तलवार लिए वर्षों से प्रतीक्षारत है। चाय के मध्य बातचीत में मुईद (दोस्त) देवेन्द्र की आत्महत्या का जिक्र छेड़ते हुए कहता है– "पिछले साल, नवम्बर में देवेन्द्र ने आत्महत्या कर ली।"....राखी में बहन नहीं आई तो वह बहन के घर राखी बँधाने खाली हाथ गया था। बहन ने राखी बाँध दी और कहा, तुम हमारी हँसी क्यों उड़वाते हो? वह दरअसल उसी क्षण मर गया था लेकिन उसने आत्महत्या रास्ते में की। हालाँकि बहन कोई अकेली वजह नहीं थी। बहन की तरह बहुत लोगों ने उसे मारा था। वह बहुत बार मरा था लेकिन आत्महत्या उसने रास्ते में की।" अखिलेश ने उपन्यास में नायक तथा उसके दोस्तों के माध्यम से आज के युवा समाज की दिन–ब–दिन खराब होती मनःस्थिति और बढ़ती आत्महत्याओं की ओर भी संकेत किया है।

बेरोजगारी व्यक्ति को समाज की नजरों में ही शर्मिंदा नहीं करती बल्कि वह उसके प्रेम को पाने में भी बाधक बनती है। बेरोजगार युवक के सामने विवाह एक बड़ी समस्या है।

जीवन के संघर्ष में पढ़ते–पढ़ते वह उम्र के उस पड़ाव पर पहुँच जाता है जहाँ 'नौकरी' और 'विवाह' दोनों ही व्यक्ति की जरूरत है। चूंकि उपन्यास का नायक एक मध्यवर्गीय पात्र है ऐसे में उसके लिए सरकारी नौकरी अलादीन के जादुई चिराग से कम नहीं है क्योंकि यह चिराग ही उसके प्रेमविवाह तक पहुँचने का शीर्षतम साधन है। प्रस्तुत उपन्यास में नायक का प्रेम विनीता है। वह उसे पाना चाहता है। उसे पाने का केवल एक ही आधार है और वह है 'नौकरी'। वह नौकरी पाना चाहता है क्योंकि उसे पता है कि यदि नौकरी नहीं मिली तो विनीता भी नहीं मिलेगी। प्रेम को पाने के लिए वह (कथानायक) अपनी पढ़ाई के दौरान ही नौकरी के फार्म भरता रहता है ताकि नौकरी प्राप्त करके विनीता से जल्द से जल्द शादी कर सके, लेकिन नौकरी पाना उतना आसान नहीं है। अपनी इसी आत्मपीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए वह कहता है– "मेरा एम.ए. का रिजल्ट निकल आया। मैं नौकरी को पाना चाहता था क्योंकि मैं विनीता को पाना चाहता था। मैं चाहता था कोई नौकरी कर उससे शादी कर लूँ। लेकिन नौकरी खफा थी।" नौकरी न मिलने के साथ प्रेम न मिलने की जिस दुखद त्रासदी का चित्रण उपन्यासकार ने किया है वह कहीं न कहीं हमारे तथाकथित समाज की दोहरी मानसिकता का परिचय देती है। शिक्षित युवाओं में बढ़ रही इस बेरोजगारी को लेकर डॉ. परमेश्वर सिंह अपनी पुस्तक 'भारतीय कृषि' में लिखते हैं कि– "इस समय अधिकांश पढ़े–लिखे युवा रोजगार की तलाश में इधर–उधर भटकते रहते हैं। एक अनुमान के अनुसार देश की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं से प्रतिवर्ष 7 लाख के लगभग छात्र अपनी शिक्षा समाप्त करके निकलते हैं और इसमें से सिर्फ आधे लोग ही रोजगार प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रकार शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी निरन्तर बढ़ती जा रही है। एक गैर सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार इस समय देश में लगभग एक करोड़ से भी अधिक शिक्षित लोग बेरोजगार है। देश में तकनीकी अथवा औद्योगिक शिक्षा की कमी, के कारण भी शिक्षित बेरोजगारी तेजी से बढ़ रही है।"

लेखक ने नायक के माध्यम से दिखाया है कि किस प्रकार एक बेरोजगार व्यक्ति खुद को समाज के सामने, परिवार तथा प्रेमिका के सामने असहज महसूस करता है। किस प्रकार बेरोजगारी की बढ़ती लकीरें उससे उसका आत्मबल और स्वाभिमान छीनती जाती है। जीवन के हर क्षेत्र में वह खुद को भीड़ से घिरे हुए नहीं बल्कि एकदम अकेला कमजोर पाता है जिसके अच्छे–बुरे की खबर तक लेने वाला कोई साथी मौजूद नहीं होता। यदि कुछ साथ होती है तो वह रेगिस्तान की तरह दूर–दूर तक पसरी बेरोजगारी जिसकी रेतीली हवाएं नायक को निरंतर सूखाती रहती है। ऐसी स्थिति में वह अपने पुराने दिनों को याद करते हुए सोचता है कि पहले वह अपने दोस्तों के बीच कितना मशहूर था– "एक वक्त था कि मेरे दोस्तों ने मेरे बारे में मशहूर किया था कि मैं जीवन के किसी भी इलाके में प्रवेश करूँ, सफलता कदम चूमेगी। सचमुच, मेरे मित्रों का दावा था कि मैं चाहूँ तो बहुत बड़ा लेखक बन सकता हूँ? मैं चाहूँ तो बहुत बड़ा अफसर बन सकता हूँ। मैं चाहूँ तो बड़ा स्मगलर बन सकता हूँ। मैं चाहूँ तो बहुत बड़ा अभिनेता बन सकता हूँ। मैं जो भी चाहूँ, बन सकता हूँ।" आज जिस तरह से समाज में बेरोजगारी की बाढ़ आई हुई है उसका सीधा जुड़ाव भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी से ही है। बड़ी–बड़ी संस्थाएं घूस के दम पर ही फल–फूल रही है। जितनी तेजी से विकास की गति बढ़ रही है उससे कहीं अधिक तेज गति से प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार के बीज पनप रहे हैं। लेखक ने कथानायक के पिता के माध्यम से भ्रष्टाचार एवं बढ़ती घूस प्रवृति को दिखाया है। बेटे के नौकरी न लगने पर एक पिता की मजबूरी और शासनतंत्र के प्रति उनका विरोधी रवैया साफ तौर पर देखा जा सकता है– "आजकल भ्रष्टाचार है, बेईमानी है। बिना पैसा–कौड़ी के कोई काम होता नहीं...तो ये जो सत्ताइस हजार हैं, इनसे अगर कोई नौकरी मिल जाए तो बात करो ...।" बेरोजगार बेटे के हाथ में रूपये थमाते हुए पिता का यह वाक्य जितना संवेदनशील है उतना ही व्यवस्था पर प्रहारक भी। उपन्यासकार द्वारा उठाया गया यह प्रसंग आज उतना ही ज्वलंत है जितना की पहले था। वर्तमान व्यवस्था अपने जिस कुत्सित एजेंडे के चलते युवाओं के भविष्य को लील रही है उसका भीतरी ढाँचा अत्यंत भ्रष्ट, हिंसक, क्रूर और अमानवीय है जिसमें बदलाव की आवयश्कता है वरना वह दिन दूर नहीं जिस दिन संपूर्ण भारत अंधकारमय हो जायेगा।

इस प्रकार आदि से अंत तक बेरोजगारी की भयावहता को प्रदर्शित करता यह उपन्यास अपने समय का बेहद महत्त्वपूर्ण आख्यान है जो कभी न खत्म होने वाली बेरोजगारी की भयावहता के साथ–साथ भ्रष्ट तंत्र पर भी तीव्र प्रहारक के रूप में खड़ा होता है। साथ ही औपन्यासिक नायक के जरिये देश के हर उस युवक–युवती की बात भी सिरे से उठाता है जिनके वर्तमान और भविष्य पर बेरोजगारी का संकट मंडरा रहा है। इस दृष्टि से यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि अन्वेषण आज के आदमी के भीतर दबे हुए प्रश्नों एवं दबी हुई चेतना की मुखर अभिव्यक्ति का सशक्त रूप है।

•

पता : श्यामलाल कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. : 7428524687

बोलती आँखें

❑ रत्नकुमार सांभरिया

''बोलती आँखें'' डॉ. अनिता वर्मा का सद्यः प्रकाशित कविता संग्रह है, जिसमें समकाल का दिग्दर्शन करातीं 68 कविताएँ संगृहीत हैं।

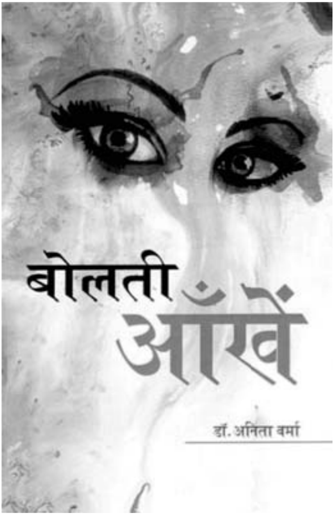

कविताओं की भावभूमि समाज और मनुष्य के चिंतन के साथ–साथ स्त्री–अस्मिता की चिंता है। पुरुषसत्ता के वर्चस्व को नकारने वाली 'बोलती आँखें' संग्रह की कविताएँ अनुभूति के छोटे–छोटे टुकड़े हैं, जिनसे एक कोलाज बनता है। कवयित्री अनुभूति के इस सच को 'मेरी बात' में स्वीकारती हैं–"बोलती आँखें काव्यसंग्रह की कविताओं को मैंने आप सबके हृदय तक पहुँचाने की कोशिश की है। इसे मेरी अनुभूत जीवनयात्रा के शब्द–चित्र भी कह सकते हैं।

कविता सृजन के लिए तीन बातें महनीय होती हैं– बिंब, प्रतीक और शब्दानुशासन। यानी लयात्मकता अथवा गेयता। कई कविताओं के प्रतिमान और भाषा की व्यंजना उन्हें एक अलहदा कवयित्री के रूप में स्थापित करते हैं। मानव और मानवेतर मन की कल्पनाएँ यथार्थ के उद्वेग प्रतीक होते हैं। कविताओं की शाश्वत निर्मितियाँ पाठक के मन के अनुरूप गुंथी हुई हैं। डॉ. विवेक कुमार मिश्र उनकी कविताओं की इसी भावभूमि के बारे में कहते हैं कि मन के द्वारा देखे हुए संसार और जो संसार हम जी रहे हैं, उसमें कवि मन का जो आंतरिक संवाद होता है, वही सृजन की भूमि रचता है। इसी भूमि से डॉ. अनिता वर्मा की कविताएँ जन्मती हैं।

'बोलती आँखें' कविता जो संग्रह का शीर्षक भी है। एक अनूठा गांभीर्य लिए हुए है। 'बोलती आँखें

अन्तर्मन की आवाज है, जो आँखों से रूबरू होती मानव जीवन को सहज स्वीकार्य है–

चिपक जातीं।

पीठ पर कभी–कभी।

महसूस करती हूँ, मैं।

इन आँखों के दूर जाने पर भी।

पीछा नहीं छोड़ती

'बोलती आँखें'।

आँखें साक्षात संवेदना के साथ साहचर्य के रूप में प्रस्तुत हैं। यानी आँखों का बिंब ही जीवन–ज्योति है, जो वक्त की पीठ पर बनी रहती है।

''जुड़ाव'' कविता के चार सोपान है। हर सोपान कवि की लक्षित मनोभावना में सन्नद्ध है। जुड़ना अंतस की ग्राहयता और संवेदनाओं का साक्ष्य।

व्यक्ति से जुड़ाव।

हृदय को भीतर तक

स्पन्दित कर देता

कभी विरह की बेला

भर देती एक टीस सी

मन के भीतर।

'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' का नारा मानवता का संवाहक, उसके उज्ज्वल भविष्य का आह्वान तथा सुरक्षाभाव है। पुरातन की उस बात का नकार भी है, जब बेटी को जन्मते ही मार देने की क्रूरता कतिपय समाजों में व्याप्त थी। बेटी के प्रति अपनी सद्भावना को कवयित्री श्बेटियाँश कविता में प्रस्तुत करती हैं

संगीत सी स्वर लहरियाँ,

बिखेर देतीं बेटियाँ,

जगमगा देती,

अँधेरे मन के कोने,

रोशनी की चमक,

उसकी तुतलाती बोली,

घोल देती शहद सा मीठापन,

सम्पूर्ण वातावरण में।

कहना होगा कि 30 जनवरी, 2020 को भारतवर्ष में कोविड वायरस का प्रवेश हुआ और वह इतनी तीव्र गति पा गया कि सालभर के अंतराल में उसने लाखोंलाख जीवन ज्योतियाँ बुझा दीं। प्राण लेवा कोरोना की उस भयावहता से उबरना 'लौट आया जीवन' कविता एक सुखद अहसास है–

मार्निंग वॉक के साथ दुनिया

चल पड़ी है अपनी राह पर

जहाँ जीवन की जड़ें

छिपी पड़ी हैं, विविध रूपों में।

कवयित्री की प्रत्येक कविता मानव या मानवेत्तर जीवन के विभिन्न पहलुओं से पाठक को साक्षात कराती हैं। 'दफ्तर की खिड़की से झांकते फूल' कविता में जीवन के सुख और दुःख या हर्ष और विषाद का शब्दचित्र प्रस्तुत हुआ है। 'मन के कोने में' में जीवन के अन्तर्द्वन्द्व के साथ अनकही अनुभूतियाँ हैं। 'पुस्तकों में डूब जाना' एक उपदेशप्रद कविता है। 'आशीर्वाद वटवृक्ष का' वृक्ष की सदाशयता पर जीवंत रूपक है। अन्तर्मन को लेकर लिखी गई 'मन की दुनिया' कविता समुन्द्र के अन्तर की भाँति गहराई और ज्वार का भाव समेटे हुए है।

'सड़क पर लोग' कविता में अनेकानेक दृश्य हैं, जो सड़क की महत्ता को आत्मसात करते हैं। यहाँ कुदरत के सताए लाखों ऐसे खानाबदोश भी हैं, जिनका ठौर–ठिकाना सड़क के छोर ही होते हैं। उनकी 'जल की धारा', 'सुबह का सूरज' या 'स्वीकारना किसी को', 'चेहरा चाँद' कविताएँ हों, किसी न किसी आयाम को लेकर सृजित हैं।

कहा जा सकता है कि डॉ. अनिता वर्मा की 'बोलती आँखें' काव्यसंग्रह की कविताएँ वक्त की आँखों का समदर्शी अहसास हैं।

•

पता : भाड़ावास हाउस, सी–137,
महेश नगर, जयपुर–302015
मो. : 9636053497

प्रतिबंधित साहित्य के पूरी तौर से सामने आने से हमारा इतिहास बदलेगा

❑ डॉ. वर्षा कुमारी

हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय एवं सी.एस.डी. एस. दिल्ली की संयुक्त शोध परियोजना द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'औपनिवेशिक भारत में प्रतिबंध' का आयोजन 7 से 9 अगस्त तक विश्वविद्यालय में किया जिसका आरंभ कुलपति प्रो बी.जे. राव द्वारा पोस्टर प्रदर्शनी के उद्घाटन से किया गया।

'अपनी माटी' पत्रिका के 'प्रतिबंधित साहित्य विशेषांक' का लोकार्पण के पश्चात गोष्ठी संयोजक और विभागाध्यक्ष प्रो. गजेंद्र कुमार पाठक ने उपस्थित अतिथियों का आभार प्रकट किया। हिंदी–उर्दू साहित्य और इतिहास लेखन में प्रतिबंधित साहित्य की उपेक्षा पर बात करते हुए प्रो. पाठक ने बताया कि प्रतिबंधित साहित्य के सामने आने से भारतीय आधुनिकता को समग्र रूप में समझा जा सकेगा तथा हिन्दी नवजागरण की परिभाषा, दायरा और इतिहास बदलेगा।

संगोष्ठी परिचय में सह अन्वेषक एवं एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सी एस.डी.एस., दिल्ली, डॉ रविकांत ने कलात्मक और दृश्य विधाओं के परिप्रेक्ष्य से प्रतिरोध को समझने की आवश्यकता का जिक्र किया और ऐसे साहित्य को उन्होंने 'Canonized' बताया तथा ये साहित्य जिसे हम अच्छा साहित्य कहते हैं उससे कैसे अलग है, इस पर विचार करने को कहा। कुलपति प्रो. बी.जे. राव ने लुप्त साहित्य को सामने लाने की पहल का अभिनंदन किया तथा इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला।

पहले बीज वक्तव्य में प्रो. चमन लाल, सेवानिवृत्त, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली ने भगत सिंह पर लिखी गई प्रतिबंधित जीवनियों, लेखों का जिक्र किया। उन्होंने बताया कि भगत सिंह की पुस्तक 'मैं नास्तिक क्यों हूं' लाला फिरोजचंद द्वारा संपादित पत्रिका 'द पीपल' में लेखों की श्रंखला के रूप में छपी और प्रतिबंधित हुई। सान्याल द्वारा लिखी गई भगत सिंह की जीवनी 1931 में रामरख सिंह सहगल की पत्रिका 'भविष्य' में छपी और प्रतिबंधित कर दी गई। उन्होंने डॉ अंबेडकर, पेरियार, के.सी. वेणुगोपाल जैसे उदाहरणों से बताया कि उनके समकालीन उनकी वैचारिकी का सम्मान करते थे और उनके विषय में लेख लिखते थे तथा उनकी पुस्तकों के अनुवाद अलग–अलग

भाषाओं में होते थे। इन पुस्तकों की ऐतिहासिकता से अधिक इनका ऐतिहासिक महत्व है।

दूसरे बीज वक्तव्य में डॉ. इसाबेल हुआ कुजा अलोंसो, सहायक प्रोफेसर, मध्य पूर्व दक्षिण एशियाई और अफ्रीकी अध्ययन, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क ने रेडियो तकनीक और द्वितीय विश्व युद्ध के समय इसके उपयोग पर बात की। उन्होंने बताया कि कैसे जर्मनी–जापान धुरी राष्ट्र इसका उपयोग प्रोपेगैंडा के लिए, ब्रिटिश सरकार इनके प्रत्युत्तर में और क्रान्तिकारी गतिविधियों को नियंत्रित करने में, सुभाष चंद्र बोस जैसे क्रांतिकारी आंदोलन की जानकारी प्रसारित करने के लिए करते थे। उन्होंने सीलोन रेडियो के बिनाका गीतमाला कार्यक्रम का भी जिक्र किया जो पूरे महाद्वीप में सुना जाता था। ऑल इंडिया रेडियो की उर्दू सेवा के कार्यक्रम भी सरहद के दोनों तरफ सुने जाते थे। दोनों रेडियो ने उपमहाद्वीप में श्रवण संस्कृति को गहरे स्तर पर प्रभावित किया।

तीसरे बीज वक्तव्य में डॉ. ज्योतिष जोशी, सीनियर फेलो, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवम पुस्तकालय, नई दिल्ली ने गांधी जी के 'हिंद स्वराज और भारतीय स्वत्व की खोज' पर बात की। उन्होंने गांधी दर्शन के मूल सिद्धांतों अहिंसा, सत्याग्रह, करूणा, आदर्श राज्य का परिचय देते हुए पश्चिमी सभ्यता की दासप्रथा, विवेकहीन मशीनीकरण, प्रतिगामी मूल्यों आदि बिंदुओं पर कड़ी आलोचना की है। इसके विपरीत, डॉ. जोशी ने भारतीय सभ्यता की परमार्थिकता सर्वात्मवादिता और समरस दृष्टि को ग्रहण करने की अनुशंसा की। सत्र समापन वक्तव्य में सत्राध्यक्ष प्रो. वी. कृष्ण, अधिष्ठाता, मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय ने इतिहास लेखन में भारतीय भाषाओं और प्रतिबंधित साहित्य को शामिल करने को आवश्यक बताया।

दूसरे सत्र का विषय 'औपनिवेशिक प्रतिबंध' रहा। सत्र की अध्यक्षता प्रख्यात कलाकार श्री अशोक भौमिक ने की। पहली वक्ता डॉ. इसाबेल हुआकुजा अलोंस ने दक्षिण–पूर्वी एशिया रेडियो, कांग्रेस रेडियो और द्वितीय विश्व युद्ध पर अपनी बात रखी दक्षिण–पूर्वी एशिया रेडियो, सीलोन ब्रिटिश सैनिकों को सरकार द्वारा युद्ध जारी रखने की पक्ष में मोड़ने के लिए किया जाता था। तकनीक का उपयोग साम्राज्य की छवि निर्माण, महिमा मंडन में किया जाता था। इसके विपरीत कांग्रेस रेडियो राजनीतिक समाचारों और भारत छोड़ो आंदोलन की जानकारी प्रसारित करने, सरकार के विरोध का कार्य करता था। उषा मेहता और लुईस माउंटबेटन के उदाहरण से उन्होंने बताया कि विषयवस्तु से अधिक तकनीक और समाज की अंतर्क्रिया महत्वपूर्ण है।

अगले वक्ता डॉ. प्रभात कुमार, सहायक प्रोफेसर, सी. एस.डी.एस., दिल्ली ने नेशनल सेंसोरियम और परवर्ती औपनिवेशिक काल समुदाय के निर्माण की वांछनीयता होती है। ऐसे राष्ट्रवाद के प्रतिपादक एक भारी नैतिक जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए ये निर्धारित करते हैं कि क्या और क्या नहीं–खाना, पहनना, देखना, सुनना है। इसके अलावा उन्होंने हिंदी साहित्य में संपादकों और तथाकथित अश्लील या घासलेटी साहित्य लिखने वाले लेखकों के विवाद पर बात की। बनारसीदास चतुर्वेदी, चंद्रगुप्त विद्यालंकार ने विशाल भारत सुधा, युवक, भारतेंदु जैसी पत्रिकाओं में लिखे गए लेखों और पत्रिकाओं में छपे कार्टूनों ने माध्यम से उन्होंने बताया कि ऐसे लेखकों को निकृष्ट प्रदर्शित किया जाता था। ऐसे सुधारवादी संपादक इस साहित्य को नैतिक अवनति का कारण मानते थे। ऐसे साहित्य की ऐन्द्रिकता के कारण इसका व्यापक प्रभाव राष्ट्रवादी चिंतन में बार–बार होता रहा था। डॉ. जॉली पुथुस्सेरी, लोक संस्कृति अध्ययन केंद्र, हैदराबाद ने केरल की लोक प्रदर्शन परंपराओं, निषेध और प्रतिबंध पर बात की।

अगली वक्ता डॉ. प्रज्ञा सेनगुप्ता, सहायक प्रोफेसर, अंग्रेज़ी विभाग, वेल्लोर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, विजयवाड़ा ने बांग्ला के विद्रोही कवि काज़ी नजरूल इस्लाम की बात कीं। नजरूल की प्रतिबंधित रचनाएं जैसे युगवानी, बिशेर बंशी, भांगार गान, प्रलय सिखा और चन्द्रबिन्दु पर बात करते हुए उन्होंने बताया कि इन रचनाओं में जाति, वर्ग, लिंग, धर्म जैसे विषय सामाजिक विषयों को उठाया गया है। उन्होंने मौखिक स्मृति और दृश्य प्रस्तुति से अनुवाद का दायरा बढ़ाने की बात की। सत्र समापन वक्तव्य में सत्र अध्यक्ष श्री अशोक भौमिक ने कहा कि प्रतिरोध का आकार नहीं प्रतिरोध की इच्छा महत्वपूर्ण है।

तीसरे सत्र का विषय 'राजनीतिक आंदोलन और प्रतिबंध' रहा। सत्र की अध्यक्षता डॉ. प्रज्ञा सेनगुप्ता ने की। पहली वक्ता वर्षा कुमारी ने 1799 से लेकर 1951 तक के प्रेस नियंत्रण कानूनों पर प्रकाश डाला। उन्होंने प्रेस अधिनियम 1799, मेटकैफ एक्ट, लाइसेंसिंग अधिनियम 1823 और 1857, वर्नाकुलर प्रेस एक्ट 1878, इंडियन प्रेस एक्ट 1910 और आजादी के बाद के प्रेस नियमन कानून 1951 का जिक्र किया। अगले वक्ता सेतु कुमार वर्मा ने औपनिवेशिक काल में पूर्वोत्तर भारत में आदिवासियों पर हुए सांस्कृतिक प्रतिबंध पर

बाएँ से अशोक भौमिक, ज्योतिष जोशी, डॉ. इसाबेल हुआकुजा अलोसो, प्रो. वी. कृष्णा, प्रो. बी.जे.राव, प्रो. चमन लाल, विजय राय, प्रो. गजेन्द्र पाठक तथा प्रो. रविकान्त।

बात की। उन्होंने बताया कि कैसे अंग्रेजी हस्तक्षेप के बाद वहां के रीति–रिवाज, लोक साहित्य और आर्थिक गतिविधियां प्रभावित हुईं।

श्वेता यादव ने दो प्रतिबंधित कहानी–संग्रहों 'सोजे वतन' और 'अंगारे' जो कि क्रमशः 1907 और 1936 में प्रकाशित हुए, पर अपनी बात रखी। प्रेमचंद का 'सोजे वतन' देशप्रेम, संस्कृतियों की टकराहट से भरा है जबकि 'अंगारे' धार्मिक रुढ़ियों पर प्रहार करता हुआ साहित्य में यथार्थ की नींव रखता है। श्वेता ने इसे प्रगतिशील लेखक संघ की आधारभूमि बताया। खुशबू कुमारी ने 1920 में छपी पंडित सुंदरलाल की प्रतिबंधित पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' पर बात की। पुस्तक में भारत के आर्थिक सामाजिक पतन और राज की नीतियों की आलोचना की गई है। कौसर सबीदा सुल्ताना ने आर्थिक–सामाजिक लेखन के कारण प्रतिबंधित रचनाओं पर बात की। उन्होंने बताया कि सखाराम देउस्कर, दीनबंधु मित्र जैसे लेखकों ने 'देशेर कथा' और 'नीलदर्पण' में अफ़ीम के नशे और नील के किसानों की दुर्दशा जैसे विषयों को उठाया जिसके कारण इन्हें प्रतिबंध का सामना करना पड़ा।

डॉ. अमरनाथ प्रजापति ने गांधी जी के आंदोलनों पर आधारित प्रतिबंधित काव्य पर चर्चा की। गांधी जी के आंदोलनों से प्रेरित होकर न केवल लेखकों बल्कि किसान, मजदूर और स्त्रियों ने भी कविता रचना की। आल्हा, बारहमासा, कजरी, ठुमरी, कव्वाली आदि अनेक शैलियों में काव्य रचना की गई। सत्र समापन वक्तव्य में सत्र अध्यक्ष डॉ. प्रज्ञा सेनगुप्ता ने कहा कि वर्तमान समाज को देखते समय एक नजर इतिहास पर होनी चाहिए।

चौथे सत्र का विषय 'क्षेत्रीय भाषाओं में प्रतिबंध' रहा। सत्र की अध्यक्षता डॉ. ज्योतिष जोशी ने की। प्रो. सुनील तिवारी, हिंदी विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय ने हिंदी के बहुत से पत्रिकाओं और संपादकों के हवाले से हिंदी पत्रकारिता के गौरवशाली इतिहास पर बात की। 1826 में निकला 'उद्दत मार्तंड' पत्रिकाओं के लिए ऐतिहासिक क्षण था। इसके बाद प्रो. तिवारी ने कलकत्ता समाचार, मालवा अखबार (1861), खिचड़ी समाचार (1888), स्वराज, कर्मयोगी, हिंदी प्रदीप (हमदम अंक प्रतिबंधित), प्रताप, अवध पंच, एडवोकेट, नई रोशनी, अवधवासी, वर्तमान, शंखनाद, क्रांति, विप्लव, स्वदेश, हिंदू पंच आदि की निर्भीक पत्रकारिता का परिचय दिया। आंदोलनकारी पत्रों में लिख रहे थे और पत्र निकाल भी रहे थे। अंग्रेजी कानूनों का मनमानापन, साधनहीनता से गुजरते हुए ये पत्र हर आंदोलन के प्रवक्ता थे।

अगले वक्ता डॉ. भीम सिंह, हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय ने राजपुताना में हो रही पत्रकारिता और विद्रोह के स्वरूप पर बात की। उन्होंने 1841 के 'मजहरूल सरूर' नामक पहले अखबार का जिक्र किया। 1864 में लिथो प्रेस की स्थापन के बाद स्कॉटिश मिशनरियों ने पाठयपुस्तकें छपवाना शुरू किया अंग्रेजी, हिंदी, उर्दू में शिक्षा देने के उददेश्य से तैयार करवाई गई थीं। इसे पहले शिक्षा अरबी, फारसी, देसी और संस्कृत में दी जाती थी, नई शिक्षा पद्धति से देशज भाषाओं में ज्ञान परंपरा को भारी हानि हुई उन्होंने 'प्रजाहितैषी', 'देशसेवी' 'प्रजासेवक', विजय सिंह पथिक के 'ऊपरमाल का डंका' पत्र का जिक्र भी किया। राजपुताना पत्रकारिता के तार सिंध, गुजरात, बॉम्बे प्रेसीडेंसी से भी जुड़े हुए थे। केशरी सिंह बारहठ की ''चेतावणी रा चुंगट्या'' प्रतिबंधित हुई। सागरमल गोपा की आजादी के दीवाने, जैसलमेर में गुंडाराज, रघुनाथसिंह का मुकदमा भी प्रतिबंधित हुई। उन्होंने रजवाड़ों में शोषण की तिहरे स्तर, ब्रिटिश रेजिडेंट, महारावल या महाराजा और ठिकानेदार, का विरोध किया।

डॉ. ज़ाहिद–उल हक़, उर्दू विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय ने बहुत से शायरों हवाले से उर्दू शायारी में व्यक्त हुई राष्ट्रीय चेतना पर बात की। उन्होंने सरदार नौबहार सिंह सबीर तोहानी, जोशी मलीहाबादी, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्ला खां, खंजर, टीकाराम सुखन, कुंवर प्रताप चांद आज़ाद, जगदम्बा प्रसाद मिश्र ''हितैषी'', शमीम करहानी, और मुशी गौरी शंकर लाल 'अख्तर' का हवाला देते हुए बताया कि कैसे शायरों ने एकता, भाईचारे, भेदभाव का नकार, जंग ए आजादी में हिस्सा लेने की प्रेरणा, आज़ादी की तमाम बड़ी घटनाओं, नेताओं, स्वदेशी आंदोलन, आर्थिक शोषण को शायरी का हिस्सा बनाया।

सत्र के अंतिम वक्ता डॉ. जे. आत्माराम, हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय मख़दमू मोहिउद्दीन के आंदोलन धर्मी व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। उनकी हैदराबाद के इतिहास पर लिखी पुस्तक लाहौर से प्रकाशित हुई। मख़दूम की पुस्तक में–स्वदेशी रजवाड़े, अंग्रेजों और जागीरदारों की कूटनीति, हैदराबाद संस्थान का उद्भव, असली लुटेरे कौन–निज़ाम ही, जनता की स्थिति, किसान आंदोलन, मज़दूर वर्ग की स्थिति, सरकारी कर्मचारियों की स्थिति, मुस्लिमों की स्थिति, लोकतंत्र की स्थापना, सुधार योजनाएं आदि अध्याय हैं। मख़दूम ने अपने आसपास की हर समस्या को लेखन में स्थान दिया जैसे बेगारी प्रथा, सामाजिक संरचनाओं में व्याप्त भेद, शिक्षा की कमी (6 फ़ीसदी), रोजगार की कमी आदि। मख़दूम ने आंदोलन में भी खुल कर हिस्सा लिया तथा मजदूर यूनियन बनाने का आह्वान किया।सत्र समापन वक्तव्य में सत्र अध्यक्ष डॉ. ज्योतिष जोशी ने कहा कि कलमकार चुप रहने की आज़ादी नहीं होती, उसका काम प्रतिरोध रचने का होता है।

पांचवे सत्र का विषय 'कला और रंगमंच' में प्रतिबंध रहा। सत्र की अध्यक्षता प्रो. विद्या सिन्हा, सेवानिवृत्त, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली ने की। पहले वक्ता श्री अशोक भौमिक ने 1943 के बंगाल अकाल के बाद लेखकों, चित्रकारों, शिल्पियों, फिल्म निर्देशकों की प्रतिक्रियाओं का ज़िक्र किया। उन्होंने सुरील जाना की तस्वीरों और रामकिंकर बैज, सोमनाथ होर, सुधीर खस्तगीर, गोबर्धन ऐश, अतुल बसु, गोपल राय, जैनुल आबेदीन के चित्रों के माध्यम से अकाल की भयावहता को दिखाया। उन्होंने 1943 के चित्ताप्रसाद के रिपोर्ताज 'भूखा बंगाल ज़िक्र किया। रिपोर्ताज में रिपोर्ट के साथ काली स्याही से किये हुए स्कैच और अपने विषयों के बारे में टिप्पणियां और स्थान के नाम का उल्लेख मिलता है।

अगले वक्ता श्री राजीव वेलिचेटी, रंगमंच एवं काला विभाग, सरोजनी नायडू संकाय, हौदराबाद विश्वविद्यालय ने प्रतिबंध को सत्ता द्वारा प्रयुक्त एक क्रियाविधि माना जिससे जनता के सामाजिक जीवन, राजनीतिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को नियंत्रित किया जा सके। राजद्रोह कानून, मानहानि, भावनाओं को ठेस, सेंसरशिप और पुस्तकों पर प्रतिबंध आदि का अब तक मौजूद होना इस बात का द्योतक है कि आज़ादी नियंत्रण के वातावरण का अंतिम बिंदु नहीं था। कला और व्यवसाय के अलगाव बात करते हुए उन्होंने बताया कि कला से धनोपार्जन न करने की अपेक्षा ने बहुत से पारंपरिक कलाकारों को ठेस पहुंचाई है।

सत्र के अंतिम वक्ता डॉ. विशाल विक्रम सिंह, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के मतानुसार मनुष्य के विवेक और मनुष्यता के कैनवास को बढ़ाने के जितने आयाम हैं, सब पर प्रतिबंध लगा है। ब्रिटेन स्वयं लोकतंत्र था लेकिन भारत में लोकतंत्र के विकास को विभिन्न कानूनों से अवरुद्ध किया गया। इसका अर्थ है कि वे इस प्रणाली से इतर आज़ादी की चेतना से भयभीत थे। लोकतंत्र एक प्रणाली नहीं प्राकृतिक आकांक्षा है। इसके अतिरिक्त वे कविताएं भी प्रतिबंधित हुईं जिनका अंग्रेजी शासन से मुक्ति से कोई सीधा संबंध नहीं था, वे नारी मुक्ति आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार से जुड़े थे, ये आंदोलन स्वतंत्रता आंदोलन के समानांतर चल रहे थे जो आम जीवन की समस्या से निजात पाना चाहते थे। आजादी की चेतना इन सभी आंदोलनों का

समुच्चय है। ये आंदोलन स्वतंत्रता मिलने के बाद भी चलते रहे हैं। चाहे वो भोजपुरी की कविताएं हो, या देउस्कर की देशेर कथा (1910), बंगाल का अकाल (1771), लगान में वृद्धि, खेती का व्यापारीकरण (1846–1943), फसलों में गिरावट, अमीरी–गरीबी, मजदूरी के घंटे कम करने हेतु संघर्ष, ऐसी रचनाएं जिनमें स्वातंत्र्य चेतना थी, जिनका सामाजिक संदर्भ था, प्रतिबंधित हुई थीं। डॉ. सिंह के अनुसार सांप्रदायिकता बढ़ाने वाली कोई रचना प्रतिबंधित नहीं हुई होगी लेकिन आधुनिकता, विवेक और मानववाद के पक्ष में की गई रचनाएं प्रतिबंधित होती हैं चाहे कोई भी शासक या विचारधारा हो। सत्र समापन वक्तव्य में सत्र अध्यक्ष प्रो. विद्या सिन्हा ने कहा कि कलाएं हमेशा इतिहास दृष्टि से जुड़ जाती हैं।

छठे और सातवें सत्र में शोध पत्र प्रस्तुत किए गए। छठे सत्र की अध्यक्षता डॉ. विशाल विक्रम सिंह ने की। सत्र की पहली वक्ता सुमन कुमारी ने अमेरिकी लेखिका कैथरीन मेयो की पुस्तक 'मदर इंडिया' के विवादित विवरणों जैसे धार्मिक रूढ़ियां, अंधविश्वास, महिलाओं के स्वास्थ्य तथा सामाजिक स्थिति, किसान–मज़दूरों की स्थिति और इस पर दलीप सिंह सौंद, धन गोपाल मुखर्जी, चंद्रावती लखनपाल, उमा नेहरू और गांधी जी जैसे बुद्धिजीवियों की प्रतिक्रिया पर अपनी बात रखी।

अगली वक्ता रामप्यारी ने सागरमल गोपा, उनकी प्रतिबंधित रचना 'रघुनाथ सिंह का मुकदमा' और उनके क्रांतिकारी जीवन पर प्रकाश डाला। गोपा ने जीवनपर्यन्त महारावल और अंग्रेजी शासन की मुख़ालफत की। उन्हें जेल में जिंदा जला दिया गया और केवल प्रजासेवक अख़बार ने जेल अधिकारियों के अमानवीय बर्ताव का पर्दाफाश किया। अक्षय अंगुलवार ने वीर सावरकर की पांच प्रतिबंधित पुस्तकों 'मेरा आजीवन कारावास', 'मोपला', 'हिंदुत्व', 'कालापानी' और 1857 का स्वातंत्र्य समर' पर अपनी बात रखी। चंद्रपाल ने लक्ष्मण सिंह के प्रतिबंधित नाटक 'कुली प्रथा' जिसमें भारतीयों को अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में काम के लिए ले जाने की कहानी है, पर अपनी बात रखी। नाटक में भारत के प्राचीन गौरव, वर्तमान अवनति, कुछ भारतीयों की मौकापरस्ती, स्त्रियों पर अत्याचार जैसे वर्णन भी है।

अभिषेक उपाध्याय ने भगत सिंह की विरासत को सैद्धांतिक रूप में व्याख्यायित किया। उन्होंने रामरख सिंह सहगल की संपादकीय प्रतिबद्धता का भी ज़िक्र किया। प्रभात कुमार ने औपनिवेशिक काल में हुए प्रतिबंधों का ज़िक्र करते हुए जेराल्ड बैरियर की पुस्तक का हवाला दिया। सत्यभामा ने 1876 के ड्रामेटिक परफॉर्मेंस एक्ट और पारसी रंगमंची पर प्रकाश डाला। उन्होंने आगा हश्र कश्मीरी, बाबू बुद्धिचंद्र मधुर और नारायण प्रसाद बेताब के प्रतिबंधित नाटकों के हवाले से बताया कि कैसे पारसी रंगमंच धार्मिक प्रतीकों का सहारा लेकर सेंसरशिप को दरकिनार करते हुए लोगों से लोगों की भाषा में संवाद कर रहे थे।

अंतिम वक्ता विकास शुक्ल ने 'चांद के फांसी' अंक को नए दृष्टिकोण से पढ़े जाने की पेशकश की। अंक के संपादकीय में चतुरसेन शास्त्री ने फांसी के सामाजिक मनोवैज्ञानिक पक्ष की व्याख्या की है जिसमें अपराधी–मनोविज्ञान, अपराध और सज़ा, अपराधी निर्माण में समाज का योगदान, कानून तथा तथा उसका विकास जैसे विषय शामिल हैं। चांद का फांसी अंक समाज विज्ञान के विभिन्न दृष्टिकोणों से पढ़े जाने की संभावनओं से भरा है। सत्र समापन वक्तव्य में सत्र अध्यक्ष डॉ. विशाल विक्रम सिंह ने कहा कि रचनाकारों द्वारा शासन का विरोध और इसके परिणामों से हम कमोबेश परिचित हैं लेकिन ये हमारी सामान्य समझ या कॉमन सेंस का हिस्सा नहीं है। इन जानकारियों को बार बार दोहराया जाना चाहिए, इससे हमारा इतिहास बोध ठोस होता है।

सातवें सत्र की अध्यक्षता डॉ. प्रभात कुमार ने की। पहले वक्ता विशाल कुमार सिंह ने सहजानांद सरस्वती द्वारा 1938 में दिए गए कॉमिल्ला अधिवेशन के प्रतिबंधित भाषण पर अपनी बात रखी। सरस्वती में अपने भाषण में किसी भी स्वतंत्रता आन्दोलन में किसान मजदूरों की भूमिका आवश्यक बताई। इसके लिए उन्होंने ऑल इण्डिया किसान सभा को बेहद ज़रूरी बताया। अगले वक्ता अजीत आर्या ने प्राच्यवादी, राष्ट्रवादी इतिहास दृष्टि और इतिहास के उपनिवेशीकरण पर चर्चा की। उन्होंने कैथरीन मेयो की पुस्तक 'मदर इंडिया' के शिक्षा, स्वास्थ्य पोषण, अंधविश्वास की समीक्षा आज को सामने रख कर की। गौरव सिंह ने रामरख सिंह सहगल द्वारा संपादित पत्रिका 'भविष्य' पर अपनी बात रखी। स्त्री पत्रकारिता में इसका योगदान अविस्मरणीय है। इसके अलावा भविष्य ने पटल पर मौजूद हर मुद्दे पर विशेषांक निकाले जैसे–प्रवासी, स्त्री, दलित आदि।

अंजना जोशी टोप्पो ने अपने बात 1857 की क्रांति और उसके बाद राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप और प्रतिबंधित रचनाओं पर की। उन्होंने बताया कि अखबारों, पत्र–पत्रिकाओं को बेचना, बांटना, राष्ट्रीय कविता–कहानियां पढ़ना, सुनना, राष्ट्रीय नाटकों का मंचन, प्रभात फेरी निकलना आदि सभी राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा थे।

कृष्णा भदौरिया ने गीतों पर अपनी बात की जिन पर प्रतिबंध लगाना मुश्किल है। इन लोकगीतों में कवि, लेखकों ने फिरंगियों द्वारा हो रहे अत्याचार, शोषण से लेकर प्रत्येक आन्दोलन से गहरे स्तर तक जुड़ी हुई थी– जैसे भारतीयों का अंग्रेजी जी–हुजूरी करने से मना करना, उनका दमन–शोषण चक्र, सामाजिक एकता, स्वाभिमान, स्वदेशी की गुहार। ये लोकगीत लेखकों के साहस और प्रतिबद्धता का दर्पण हैं।

प्रज्ञा कुमारी ने अपनी बात बेचन शर्मा उग्र द्वारा लेनिन को श्रद्धांजलि स्वरूप रचित नाटक 'लाल क्रांति के पंजे में' (1924) पर रखी। नाटक में क्रांति द्वारा रूस की ज़ारशाही को ध्वस्त किए जाने का चित्रण है परंतु इनमें अंग्रेजी हुकूमत को निशााना बनाया गया है।

सत्र समापन वक्तव्य में सत्र अध्यक्ष डॉ. प्रभात कुमार ने रेखांकित किया कि परवर्ती औपनिवेशिक काल के साहित्य में अन्र्तराष्ट्रीयता है। साम्राज्य केंद्रित आधुनिकता को दरकिनार कर साहित्यकार अलग–अलग देशों के इतिहास, राजनीति से उदाहरण लाते हैं। बुद्धिजीवी लंदन से इतर अब रूस जर्मनी, अमेरिका पर लिख रहे थे। सबाल्टर्न लेखक मिलिट्री सेवा, गिरमिटिया आदि के अनुभवों पर लिखने लगे थे।

समापन सत्र की अध्यक्षता प्रो. चमनलाल ने की। पहले वक्ता विजय राय, संपादक लमही, लखनऊ ने अपनी बात उन क्रांतिचेतना युक्त व्यक्तियों की चर्चा से जिन्होंने तमाम जुल्मों के बावजूद अपनी आवाज को बुलंद रखा। उन्होंने सुंदरलाल की 'भारत में अंग्रेजी राज', रवींद्रनाथ टैगोर की 'रूस की चिट्ठी', शचीन्द्रनाथ सान्याल की 'बंदी जीवन', प्रेमचंद के कहानी–संग्रह, किशोरीदास वाजपेयी की व्याकरण की पुस्तक जैसे उदाहरणों से बताया कि कैसे अंग्रेजों ने मनमाने कानूनों से अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को दबाया। राय ने 'महारथी' और 'हिंदूपंच' जैसी पत्रिकाओं का भी जिक्र किया। क्रान्तिकारी जीवन में साहित्य के महत्व को रेखांकित करते हुए उन्होंने अशफाकुल्ला खां का उदाहरण दिया कि कैसे वे अपनी अंतिम चिट्ठियों में कविता की एक–दो पंक्तियां अवश्य लिखते थे।

अगली वक्ता प्रो. विद्या सिन्हा ने भोजपुरी के प्रतिबंधित लोकगीतों पर अपनी बात रखी। उन्होंने बताया कि लोक साहित्य लोक के लिए, लोक का जीवन, लोक द्वारा ही व्यक्त करता है। ये इतिहास में दर्ज नहीं हैं, इनके प्रमाण गांवों में मिलते हैं। इनकी परंपरा मौखिक है। इनमें संघर्ष, तत्कालीन नेताओं, सरकार के बारे में प्रमाणिक जानकारी मिलती है। उन्होंने मनोरंजन प्रसाद की 1857 के आरां क्षेत्र के सेनानी वीर कुंवर सिंह पर लिखी कविता 'वीर कुंवर सिंह' और 'फिरंगिया' का जिक्र करते हुए बताया कि ये कैसा इतिहास बोध है कि जहां संपत्तिशास्त्र में महावीर प्रसाद द्विवेदी भारतीयों की गरीबी का विवेचन कर रहे हैं, वहीं फिरंगिया का कवि उनको गा रहा है– ''सात सौ लोग दूं–दूं सांझ भूखे रहे, हरदम पड़ेला अकाल रे फिरंगिया, जेहु कुछु बॉचेला त ओकारो के लादि–लादि, ले जाला समुंदर के पार रे फिरंगिया''। इन गीतों का प्रभाव सीधा था और ये स्मृति के अंग बन गए। लोकगीत लोक धुनों पर रखे जाते थे। सरकार से बचने के लिए इनके बोल बदल दिए जाते थे और विरोध के समय मूल रूप में आ जाते थे। इतिहास के अलावा राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र को भी ये गीत मिट्टी के यथार्थ से समृद्ध कर सकते हैं।

डॉ. रविकांत ने 'भविष्य' और बलिदानी पत्रकारिता के पर्याय रामरख सिंह सहगल पर अपनी बात रखी। बहुतेरे विषयों पर पत्रिका में छपता था जैसे– कविता, मुशायरे, महिलाओं की सत्याग्रह में भागीदारी, घरेलू हिंसा, इतिहास, लाहौर षडयंत्र केस, गोलमेज सम्मेलन, दिल्ली षड़यंत्र केस, विश्व इतिहास के महत्वपूर्ण आंदोलन, विधवा पुनर्विवाह, राष्ट्रवाद इत्यादि।

सत्र समापन वक्तव्य में सत्र अध्यक्ष प्रो. चमनलाल ने 'भविष्य' को अंधेरे में आशा की किरण बताया। उन्होंने आयोजकों प्रो. गजेंद्र कुमार पाठक और डॉ. आशुतोष पांडेय को बधाई देते हुए उनके इतिहास के जरूरी हिस्से को वापस लाने की पहल का अभिवादन किया।

इसके बाद सांस्कृतिक संध्या में लक्ष्मण सिंह के प्रतिबंधित नाटक 'कुली प्रथा' का मंचन हिन्दी विभाग के विद्यार्थियों और शोधार्थियों द्वारा किया गया। नाटक का निर्देशन अमरजीत कुमार ने किया, सह–निर्देशन श्वेता यादव का रहा। इसके बाद मलय मंडल और हिन्दी विभाग के विद्यार्थियों तथा शोधार्थियों द्वारा प्रतिबंधित गीतों का गायन किया गया।

•

पता : आई.ओ.ई. प्रोजेक्ट, पोस्ट डॉक्टोरल
फेलो, हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

ई–पेमेण्ट हेतु प्रपत्र

DDO Code

4731

Name (Account holder)

Account Number

Bank Name

ACCOUNT TYPE

☐ SBI Account

☐ Other Then SBI Account

(Tick Type of account "SBI Account" or "Other then SBI Account")

Branch Code / IFSC Code

(Branch Code if account type is SBI Account else IFSC Code)

Address 1	
Address 2	
Address 3	
Mob. No.	
Email ID	

उत्तर प्रदेश

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0, लखनऊ

ग्राहक/सदस्यता संबंधी प्रारूप

मैं 'उत्तर प्रदेश' (मासिक) पत्रिका की सदस्यता प्राप्त करना चाहता हूँ

वार्षिक	रु. 180/-	☐
द्विवार्षिक	रु. 360/-	☐
त्रैवार्षिक	रु. 540/-	☐

(कृपया सदस्यता अवधि चिन्हित करें)

डी.डी/म.आ.नं. : ________________ तिथि ________

नाम : ____________________

ग्राहक का विवरण : छात्र ☐ विद्वत्जन ☐

संस्था ☐ अन्य ☐

पत्र व्यवहार का पता : ____________________________

____

____

पिन कोड नं0: ☐☐☐☐☐☐

यदि आप पता बदलना चाहते हैं अथवा ग्राहक नवीनीकरण करना चाहते हैं तो कृपया अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख करें ☐

नोट : कृपया डी.डी./एम.ओ. (धनादेश) निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग (प्रकाशन प्रभाग), दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ–226 001 के नाम ही भेजने का कष्ट करें।

संजय शौक की ग़ज़ल

इन पत्थरों के शहर में रस्ता बनाऊँगा
दीवार–ए–बेहिसी में दरीचा बनाऊँगा

पत्थर कबाड़ धूल का सहरा बनाऊँगा
काग़ज़ पे जब भी चाँद का चेहरा बनाऊँगा

वो जख्म दे कि भूल न पाऊँ तमाम उम्र
मुझको भी जिद है तुझको मसीहा बनाऊँगा

मैं रोशनी को बाँटने वाला सफीर हूँ
सूरज जो बुझ गया तो उजाला बनाऊँगा

आँखों से अपने इश्क़ का पैगाम भेजकर
इक अजनबी को मैं भी शनासा बनाऊँगा

उसने कहा कि तुमसे बनेगा नहीं खयाल
मैंने कहा मैं आपसे अच्छा बनाऊँगा

ग़ज़लों में मैं भरूँगा नएपन की रोशनी
अपने कलम की धार से लहजा बनाऊँगा

हासिल है तू सो तुझसे बिछड़कर जरा सी देर
मैं तेरे इंतज़ार का लम्हा बनाऊँगा

सजदा–गुजार जिंदा जबीं ले के आए हैं
मैं मुंतजिर रहूँगा मुसल्ला बनाऊँगा

ऐ शौक़ इक सफ़ीरे–मुहब्बत हूँ इसलिए
दुनिया में रह गया तो मैं हल्क़ा बनाऊँगा

◆

पता : 538क / 231, दीन दयाल नगर,
खदरा, सीतापुर रोड, लखनऊ
मो. : 7905471168

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक	:	समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
नया दौर (उर्दू)	:	सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी)	:	उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए शिशिर, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित, सम्पादक– **कुमकुम शर्मा**